मूल्य : ₹ 50

सितम्बर 2025

आई.एस.ओ. 9001: 2015 संगठन

भाकृअनुप
ICAR

खेती

बेटी बचाओ
बेटी पढ़ाओ

मुर्गी पालन से आर्थिक उड़ान

पराली प्रबंधन से स्वच्छ पर्यावरण एवं समृद्ध किसान

नरेन्द्र मोहन सिंह[1], **अलका सिंह**[2], **आकृति शर्मा**[3] और **विपुल शाह**[4]

पंजाब, भारत का एक ऐसा राज्य है, जहां खेती अर्थव्यवस्था का आधार है। प्रत्येक वर्ष फसल कटाई के बाद बचे अवशेष, खासकर धान की पराली, को जलाने की प्रथा ने पर्यावरण को गंभीर नुकसान पहुंचाया है। हालांकि आधुनिक तकनीकों और वैज्ञानिक उपायों के माध्यम से इनका प्रभावी प्रबंधन संभव है। ऐसे ही एक उद्यमी श्री सुक्खमीत सिंह जी ने स्टार्टअप के माध्यम से पराली की समस्या को अवसर में बदलने का कार्य किया। यह कहानी न केवल स्टार्टअप की सफलता को दर्शाती है, बल्कि यह भी दिखाती है कि कैसे नवाचार और उद्यमिता पर्यावरण और किसानों के लिए लाभकारी हो सकते हैं।

भारत में प्रत्येक वर्ष फसल कटाई के उपरान्त लगभग 750 मिलियन टन फसल अवशेष उत्पन्न होते हैं। इसमें से केवल पंजाब और हरियाणा में 35 मिलियन टन धान की पराली शामिल है। परंपरागत रूप से, किसान इस पराली को जला देते हैं। यह प्रथा दिल्ली और आसपास के क्षेत्रों में गंभीर वायु प्रदूषण का कारण बनती है।

ऐसे में पराली का समुचित एवं उन्नत प्रबंधन बेहद आवश्यक हो जाता है। यह सफलता गाथा एक साधारण किसान परिवार में जन्मे 45 वर्षीय श्री सुक्खमीत सिंह जी जैसे उद्यमी की समझदारी को दर्शाती है कि कैसे नवाचार और सहयोग से न केवल पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान हो सकता है, बल्कि किसानों की आर्थिक स्थिति भी सुधर सकती है।

पराली का आधुनिक प्रबंधन

पराली जलाने से वायु प्रदूषण

दिल्ली में वायु प्रदूषण के गंभीर प्रभावों को देखते हुए, इन्होंने एक स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण के लिए काम करने का संकल्प लिया। यह व्यक्तिगत प्रतिबद्धता इनकी सफलता की कहानी को और भी प्रेरणादायक बनाती है। इन्होंने पूसा कृषि, क्षेत्रीय प्रौद्योगिकी प्रबंधन और व्यवसाय आयोजन एवं विकास इकाई, भाकृअनुप-भाकृअनुसं, नई दिल्ली से तकनीकी ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त, वर्ष 2018 में A2P एनर्जी सॉल्यूशन प्राइवेट लिमिटेड कंपनी की राजपुरा, पंजाब में स्थापना की। ग्रीन एनर्जी, आईटी और कृषि में अनुभव होने के कारण इन्होंने, पराली की समस्या को एक अवसर में बदल दिया और पंजाब की 10,000+ एकड़ जमीन को पराली जलाने से न केवल बचाया बल्कि पराली को पेलेट्स में परिवर्तित भी किया। फसल अवशेषों से बने ये पेलेट्स कोयले और लकड़ी के विकल्प के रूप में उपयोग किए जाते हैं। ये 60-70 प्रतिशत कम नमी वाले, स्वच्छ और सस्ते ईंधन हैं। ये पेलेट्स कोयले जैसे जीवाश्म ईंधन की जगह लेते हैं। कोयले की तुलना में कम हानिकारक धुआं उत्पन्न करते हैं, जिससे स्वच्छ ऊर्जा का उत्पादन होता है। कंपनी प्रत्येक महीने 600 मीट्रिक टन पेलेट्स का उत्पादन करती है, जो बड़े पैमाने पर उद्योगों जैसे पेप्सी और हिंदुस्तान यूनिलीवर को आपूर्ति किए जाते हैं। कंपनी का वार्षिक टर्न-ओवर कुल राजस्व प्राप्ति का 10 प्रतिशत से 15 प्रतिशत तक होता है।

पराली से बनी पेलेट्स

भावी कदम

श्री सिंह जी का यह दृष्टिकोण केवल वर्तमान तक सीमित नहीं है। वह अपने क्लीन एनर्जी ट्रेड प्लेटफॉर्म का विस्तार करना चाहते हैं और वैश्विक कंपनियों के साथ साझेदारी करके अधिक जैव-ईंधन उत्पादन सुविधाएं स्थापित करना चाहते हैं। इनका लक्ष्य है कि यह मॉडल न केवल पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान करें, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी मजबूती प्रदान करें। ■

प्रभाव और लाभ

पर्यावरण को स्वच्छ रखने हेतु श्री सिंह जी के नवाचार ने किसानों की आर्थिक स्थिति को भी बेहतर किया है। इस पहल से जुड़े किसान पराली को बेचकर प्रति एकड़ 3000 रुपये तक कमा सकते हैं। उदाहरण के लिए, 10 एकड़ जमीन वाले किसान 30,000 रुपये तक की अतिरिक्त आय कमा सकते हैं। अब तक, 600 से अधिक किसान इस कार्यक्रम का हिस्सा बन चुके हैं। इस नवाचार के माध्यम से एक सीजन में 900 टन पराली को जलने से बचाया गया है। इससे कार्बन उत्सर्जन में कमी आई है, जो प्रतिदिन 285 कारों के उत्सर्जन के बराबर है। इसके अलावा, इस पहल ने एक सीजन में 30 से अधिक लोगों के लिए रोजगार के अवसर भी उत्पन्न किए हैं।

[1]एवं [2]कृषि अर्थशास्त्र संभाग, [3]सीईओ पूसा कृषि; [4]मार्केटिंग और कम्युनिकेशन मैनेजर, पूसा कृषि, क्षेत्रीय प्रौद्योगिकी प्रबंधन और व्यवसाय आयोजन एवं विकास इकाई, भाकृअनुप-भाकृअनुसं,नई दिल्ली-110012

भाकृअनुप
ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान की मासिक पत्रिका
वर्षः 78, अंकः 5, सितम्बर 2025

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. राजबीर सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. अनुराधा अग्रवाल** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. विनोद कुमार सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-क्रीडा, हैदराबाद
4. **डा. धीर सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
5. **डा. के.के. सिंह** — **सदस्य**
   कुलपति
   सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय
   मोदीपुरम, मेरठ
6. **श्री हर्षवर्धन** — **सदस्य**
   प्रधान जनसंपर्क अधिकारी, इफको, नई दिल्ली
7. **श्री रितु राज** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **सुश्री नीलम त्यागी** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
9. **डा. अनु राहल** — **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल
संपादक
सुनीता अरोड़ा
संपादन सहयोग
गजेन्द्र

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
भूपेन्द्र दत्त
दूरभाषः 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12

एक प्रतिः रु. 50.00 वार्षिक : रु. 500.00
विशेषांक : रु. 200.00

E-mail : khetidipa@gmail.com

डिस्क्लेमर
लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुनः प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

इस अंक में

निदेशक की कलम से — कृषि में डिजिटल क्रांतिः स्मार्ट खेती की ओर बढ़ते कदम, **अनुराधा अग्रवाल**

4 **नवाचार**
पत्तों और कृषि अपशिष्ट से बने जैव-अपघटनीय बर्तन
दीपिका शेंडे **और** नीता खंडेकर

12 **पारंपरिक**
पर्यावरण अनुकूल प्राकृतिक खेती
अमरेश चौधरी, राम नारायन सिंह, गोरक्ष वाकचौरे **और** हरिशा सी.बी.

8 **पोषण**
अरुणाचल प्रदेश में कुट्टू की लाभकारी खेती
रघुवीर सिंह **और** नीलम शेखावत

14 **नियंत्रण**
कपास में गुलाबी सुंडी का प्रबंधन
अजंता बिराह, लिकन कुमार आचार्य, अनूप कुमार **और** मुकेश खोखर

10 **व्यावसायिक**
कुक्कुट पालन से आर्थिक सशक्तिकरण
श्रवन कुमार **और** स्तुति सिंह

16 **पशुपालन**
ताप तनाव में देसी पशुधन की अनुकूलनशीलता
सोहनवीर सिंह

विषय-सूची

विषय-सूची

21 उपकरण

कीट प्रबंधन हेतु सौर आधारित एलईडी प्रकाश जाल

नीलेश रायपुरिया **और** पी.डी. सिंह

24 उपाय

श्रीअन्न फसलों में समेकित रोग प्रबंधन

संजीव कुमार, सी.एस. आजाद, देवेन्द्र मंडल **और** राकेश कुमार

27 महत्व

फसल उत्पादन में सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका

रूही, विजय कुमार, रोहतास कुमार **और** हरदीप श्योराण

सफलता गाथा

आवरण II

पराली प्रबंधन से स्वच्छ पर्यावरण एवं समृद्ध किसान

30 जैविक खेती

शरबती गेहूं का भरपूर उत्पादन

निर्झरणी नंदेहा **और** आयुषी त्रिवेदी

33 कृषि कैलेण्डर

सितम्बर के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, अंजली पटेल, प्रवीण कुमार उपाध्याय, एस.एस. राठौर और आदित्य सिंह

पुस्तक समीक्षा

आवरण III

मीठाजल कृषि प्रौद्योगिकी से आर्थिक उत्थान

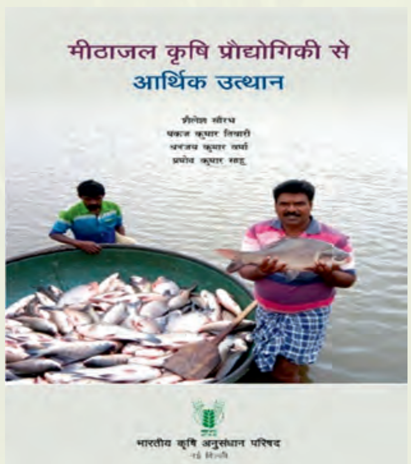

निदेशक की कलम से

कृषि में डिजिटल क्रांतिः स्मार्ट खेती की ओर बढ़ते कदम

डिजिटल क्रांति भारतीय कृषि में एक नये युग की शुरुआत है। परंपरागत कृषि पद्धतियों के साथ-साथ अब भारत में डिजिटल तकनीक का प्रवेश खेती को एक नई दिशा दे रहा है। स्मार्टफोन, इंटरनेट, जीपीएस, ड्रोन, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और डेटा एनालिटिक्स जैसे उपकरण अब किसानों की मदद कर रहे हैं।

डिजिटल तकनीक जैसे कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता या आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, ड्रोन, सैटेलाइट इमेजरी, मोबाइल एप्स और ब्लॉक चेन आज कृषि क्षेत्र को आधुनिक बनाने में अहम भूमिका निभा रहे हैं। अब किसान इनके जरिए मौसम की सटीक जानकारी, फसल रोगों के विषय में जानकारी, उर्वरकों की मात्रा का निर्धारण और उपज बढ़ाने की तकनीक आसानी से जान सकते हैं।

वहीं रिमोट सेंसिंग, सैटेलाइट इमेज और ड्रोन तकनीक से अब खेतों की निगरानी संभव हो गई है। इससे समय पर सिंचाई, कीटनाशक छिड़काव और फसल स्वास्थ्य पर नजर रखी जा सकती है।

मोबाइल एप्स के जरिए अब मौसम की सूचना, बाजार भाव, उर्वरक की मात्रा जैसी जानकारी किसानों को मिल रही है। इससे उत्पादन और लाभ दोनों बढ़ रहे हैं।

किसान अब डिजिटल मंडियों (ई-नाम) के जरिए सीधे खरीदारों से जुड़ रहे हैं। इससे किसानों को फसल का उचित मूल्य मिलता है और बिचौलियों की भूमिका कम हो रही है।

डिजिटल बैंकिंग और किसान क्रेडिट कार्ड, यूपीआई आधारित बैंकिंग से किसान आसानी से ऋण, बीमा और सब्सिडी का लाभ उठा पा रहे हैं।

हालांकि ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता का अभाव, नेटवर्क की समस्या, महंगे उपकरण जैसी चुनौतियां भी डिजिटल कृषि के विस्तार में प्रमुख अवरोध बनी हुई हैं। इनका समाधान सरकारी योजनाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों और निजी क्षेत्र की भागीदारी से निकाला जा सकता है।

कृषि में डिजिटल क्रांति न केवल उत्पादकता बढ़ाने का जरिया है, बल्कि यह युवाओं को खेती से जोड़ने, लागत घटाने और पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने की दिशा में भी एक क्रांतिकारी कदम है। स्मार्ट खेती भविष्य का सच है और भारत इसमें अग्रणी भूमिका निभा सकता है। डिजिटल क्रांति कृषि में एक नई दिशा की किरण बनकर उभर रही है।

(अनुराधा अग्रवाल)

पत्तों और कृषि अपशिष्ट से बने जैव-अपघटनीय बर्तन

दीपिका शेंडे[1] और **नीता खंडेकर**[2]

"आज जब प्लास्टिक प्रदूषण वैश्विक चिंता का विषय बन चुका है, ऐसे में जैव-अपघटनीय बर्तन (बायोडिग्रेडेबल कटलरी) एक नई उम्मीद लेकर आए हैं। विशेष रूप से पत्तों, कृषि अपशिष्ट और कृषि उप-उत्पादों से बने ये पर्यावरण अनुकूल बर्तन न केवल पर्यावरण संरक्षण में सहायक हैं, बल्कि पारंपरिक और सांस्कृतिक मूल्यों को भी पुनर्जीवित कर रहे हैं। शादी-ब्याह, धार्मिक समारोह, पारिवारिक भोज और सामुदायिक आयोजनों में इनका उपयोग एक नई शुरुआत की तरह है। वहीं 20 से 30 वर्ष पहले लोग बर्तनों के रूप में केले के पत्ते, पलाश के पत्ते, साल और सागौन (टीक) के पत्ते, कमल के पत्ते और विभिन्न हरे पत्तों का उपयोग किया करते थे। इन पत्तों से बनी थालियां और दोने, जिन्हें सुखाकर और आकार देकर तैयार किया जाता था। पारंपरिक रूप से प्रत्येक मौसम में उपयोग में लाए जाते थे और इनका व्यापक रूप से उपयोग होता था। पत्तों से बने बर्तन पूरी तरह से पर्यावरण अनुकूल होते थे और उपयोग के बाद आसानी से जैविक रूप से नष्ट हो जाते थे। उस समय यह प्रथा न केवल व्यावहारिक थी, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती थी। पत्तों से बने बर्तनों का उपयोग पर्यावरण के लिए अत्यंत लाभकारी होता है। ये पूरी तरह जैविक होते हैं और उपयोग के बाद आसानी से नष्ट हो जाते हैं। इससे प्रदूषण नहीं फैलता। इनका उत्पादन स्थानीय स्तर पर किया जा सकता है, जिसमें ग्रामीणों एवं युवा वर्ग के लिए रोजगार की असीम संभावनाएं हैं।"

[1]सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी; [2]प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप-केंद्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान, भोपाल-462038

पत्तों में प्राकृतिक शीतलता होती है, जो आहार को ताजगी प्रदान करती है। रसायन रहित होने के कारण ये स्वास्थ्य के लिए भी सुरक्षित होते हैं। शादी-ब्याह और धार्मिक आयोजनों में इनका प्रयोग पारंपरिक संस्कृति को भी बनाए रखता है। इसके साथ ही, ये बर्तन प्लास्टिक के विकल्प के रूप में बेहतर और टिकाऊ होते हैं।

बायोडिग्रेडेबल सामग्री के विघटन की सरल प्रक्रिया

बायोडिग्रेडेबल सामग्री यानी जैव-अपघटनीय पदार्थ वे होते हैं, जो प्राकृतिक रूप से मिट्टी, जल और वायु में मौजूद सूक्ष्मजीवों (जैसे बैक्टीरिया और फफूंद) की सहायता से धीरे-धीरे विघटित हो जाते हैं। यह प्रक्रिया पूरी तरह प्राकृतिक होती है और इसमें कोई हानिकारक रसायन या अवशेष नहीं बचता। जैसे ही बायोडिग्रेडेबल कटलरी (पत्तों या कृषि अपशिष्ट से बनी प्लेटें, चम्मच आदि) उपयोग के बाद मिट्टी या खाद के ढेर में डाली जाती है, वैसे ही इन पर सूक्ष्मजीवों की क्रिया शुरू हो जाती है। नमी, तापमान और ऑक्सीजन की उपस्थिति में ये सूक्ष्मजीव इन जैविक पदार्थों को छोटे-छोटे घटकों में तोड़ देते हैं। यह प्रक्रिया सामान्यत: 30 से 90 दिनों में पूरी हो जाती है।

विघटन के अंत में यह सामग्री कार्बन डाइऑक्साइड, पानी और पौधों के लिए उपयोगी जैविक खाद (ह्यूमस) में परिवर्तित हो जाती है। यह खाद खेतों में डालकर मिट्टी की उर्वराशक्ति बढ़ाई जा सकती है। इस प्रकार बायोडिग्रेडेबल कटलरी न केवल प्रदूषण को कम करती है, बल्कि कृषि क्षेत्र में पोषण भी लौटाती है।

बर्तन बनाने की विधि

वृक्षों के पत्तों से दोना या पत्तल बनाने की कई विधियां प्रचलित हैं, जैसे ग्रामीण पद्धति, सिलाई मशीन द्वारा जोड़ने की पद्धति और आधुनिक हाइड्रोलिक प्रेस मशीन का उपयोग।

थाली के रूप में केले के पत्ते

जैव अपघटनीय बर्तन

जैव अपघटनीय (बायोडिग्रेडेबल कटलरी) का तात्पर्य उन उपयोगी बर्तनों से है, जैसे-चम्मच, प्लेट, कटोरे या दोने आदि, जो पूरी तरह से प्राकृतिक एवं जैविक सामग्री से निर्मित होते हैं। ये उपयोग के बाद कुछ ही सप्ताह में सूक्ष्मजीवों (माइक्रोऑर्गेनिज्म) की क्रिया द्वारा बिना किसी हानिकारक अवशेष के पर्यावरण में स्वतः विघटित हो जाते हैं। इन बर्तनों के निर्माण में ऐसे संसाधनों का उपयोग किया जाता है, जो पुनः नवीकरणीय होते हैं और जिनका प्रभाव पर्यावरण पर नहीं होता है। यह आधुनिक टिकाऊ विकास की अवधारणा के अनुरूप एक महत्वपूर्ण विकल्प है। बायोडिग्रेडेबल कटलरी मुख्य रूप से विभिन्न प्रकार के पत्तों एवं कृषि अपशिष्टों से बनाई जाती है। इनमें प्रमुख रूप से केले के पत्ते, साल, सागौन, पलाश, कमल के पत्ते तथा धान की पराली, गेहूं की भूसी, गन्ने की खोई, मकई के डंठल जैसे-जैविक अवशेष शामिल हैं। ये सभी उत्पाद न केवल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, बल्कि पारंपरिक रूप से भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में लंबे समय से उपयोग में लाए जाते रहे हैं। इन बर्तनों के निर्माण में सबसे पहले पत्तों या कृषि अवशेषों को साफ किया जाता है, फिर उन्हें प्रेस मशीनों के माध्यम से विशिष्ट आकार जैसे-थाली, कटोरी या चम्मच में ढाला जाता है। कभी-कभी इन उत्पादों की मजबूती बढ़ाने के लिए इन्हें एक विशेष प्रकार की गर्मी (थर्मल प्रोसेसिंग) और दबाव (हाइड्रॉलिक प्रेस) द्वारा सख्त बनाया जाता है।

पत्तों को जोड़ने हेतु सिलाई मशीन

सिलाई मशीन से पत्तों को जोड़ने की प्रक्रिया दोना-पत्तल बनाने का एक आधुनिक और प्रभावी तरीका है। यह न केवल समय की बचत करता है, बल्कि इससे तैयार की गई पत्तलें और कटोरियां अधिक मजबूत, सुंदर और आकर्षक भी होती हैं। पारंपरिक रूप से हाथ से बनाई गई पत्तलों की मजबूती सीमित होती है, जिससे उनमें रखे आहार के गिरने की आशंका रहती है। लेकिन जब इन्हें सिलाई मशीन से सिला जाता है, तो पत्ते आपस में अच्छी तरह जुड़ जाते हैं। इससे एक मजबूत आधार तैयार होता है। इस प्रकार सिलाई मशीन द्वारा तैयार दोना-पत्तल न केवल पारंपरिक ज्ञान का आधुनिक उपयोग है, बल्कि यह स्वच्छता, पर्यावरण-संरक्षण और स्वरोजगार को बढ़ावा देने वाला एक सकारात्मक कदम भी है।

ग्रामीण पद्धति में पत्तों को हाथ से जोड़कर बांस की बारीक सीकों की मदद से सिलाई या कांटों की सहायता से दोना-पत्तल बनाया जाता है। यह परंपरागत, सस्ती और पर्यावरण अनुकूल विधि है, लेकिन इसमें अधिक समय और मेहनत लगती है। दूसरी ओर, सिलाई मशीन का उपयोग कर पत्तों को मजबूती से जोड़ा जाता है, जिससे पत्तल अधिक टिकाऊ बनती है। वहीं, आधुनिक हाइड्रोलिक प्रेस तकनीक से दोना-पत्तल को जल्दी, मजबूत और जलरोधक रूप में तैयार किया जा सकता है। किस पद्धति का उपयोग किया जाए, यह मुख्य रूप से बनाने वाले पर निर्भर करता है-वह किस संसाधन, समय और उद्देश्य के आधार पर किस विधि का चयन करता है।

पत्तों से बने दोने (कटोरी)

जैविक बर्तन बनाने हेतु पत्ते एवं सींक

गेहूं की भूसी से तैयार उत्पाद

ग्रामीण पद्धति

ग्रामीण भारत में, विशेषकर मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा तथा उत्तर भारत के कई क्षेत्रों में, लोग पारंपरिक रूप से साल, पलाश, केले और महुआ जैसे वृक्षों के पत्तों से दोना-पत्तल (पत्तों की प्लेटें और कटोरियां) बनाते हैं। यह एक पुरातन कुटीर उद्योग है, जिसमें महिलाओं और बुजुर्गों की सक्रिय भागीदारी रहती है। इन पत्तों को हाथ से या फिर लकड़ी अथवा बांस की बारीक सीकों की मदद से अथवा सिलाई के धागे से जोड़कर, प्लेट और कटोरी का आकार दिया जाता है। यह प्रक्रिया न केवल पर्यावरण के अनुकूल है, बल्कि ग्रामीण रोजगार का भी एक प्रमुख साधन बन गया है।

सामाजिक और आर्थिक लाभ

ग्रामीण क्षेत्रों में पत्तों और कृषि अपशिष्ट से बनी जैव-अपघटनीय कटलरी के निर्माण ने एक नवाचार पूर्ण और सतत विकास मॉडल प्रस्तुत किया है। इस प्रक्रिया में स्थानीय महिलाएं और किसान सक्रिय भागीदारी निभा रहे हैं, जिससे उन्हें स्वरोजगार और स्थायी आय के स्रोत उपलब्ध हो रहे हैं। पत्तों की सफाई, आकार देना, उन्हें प्रेस में ढालना तथा अंतिम उत्पाद तैयार करना-यह सम्पूर्ण प्रक्रिया श्रमप्रधान होने के कारण रोजगार सृजन में सहायक सिद्ध हो रही है।

इसके अतिरिक्त, यह उत्पादन प्रणाली स्थानीय संसाधनों पर आधारित होने के कारण परिवहन और कच्चे उत्पाद की लागत को कम करती है, जिससे पर्यावरणीय प्रभाव भी घटता है। जैव-अपघटनीय कटलरी निर्माण में प्रयुक्त तकनीकें पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान का समन्वय, ग्रामीण क्षेत्रों में हरित उद्योग की स्थापना की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

ये उत्पाद केवल पर्यावरण हितैषी ही नहीं हैं, बल्कि स्थानीय हस्तशिल्प, पारंपरिक

पत्तों से दोना-पत्तल बनाने की पारंपरिक पद्धति

आधुनिक पद्धति

हाइड्रोलिक प्रेस मशीनः जलरोधकता और मजबूती के लिए ग्रामीण भारत में दोना-पत्तल, कटोरी और प्लेटें पारंपरिक रूप से साल, पलाश, महुआ या केले के पत्तों से बनाई जाती रही हैं। पहले इन्हें हाथ से सिलकर तैयार किया जाता था, लेकिन अब इन पारंपरिक तरीकों को आधुनिक तकनीक से जोड़कर हाइड्रोलिक प्रेस मशीनों के उपयोग से किया जा रहा है। ये मशीनें पत्तों और कृषि अपशिष्ट से बनी कच्ची सामग्री को उच्च तापमान और दबाव देकर एक निश्चित आकार और मजबूती प्रदान करती हैं।

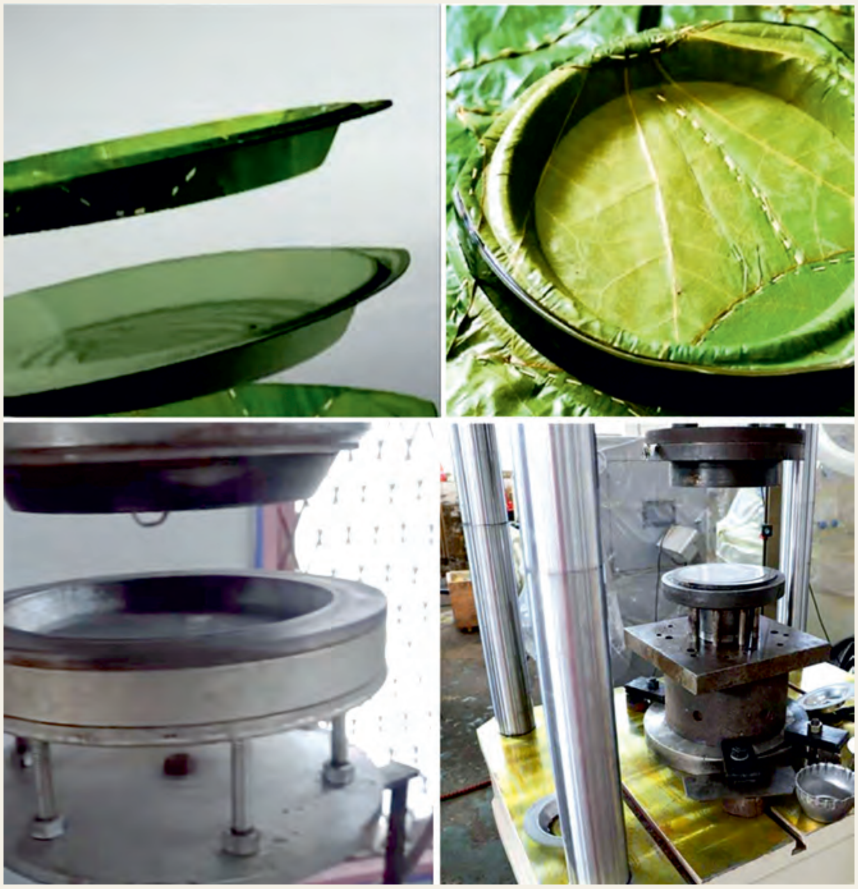

हाइड्रोलिक प्रेस मशीन

हाइड्रोलिक प्रेस मशीन का उपयोग

यह मशीन एक प्रकार की यांत्रिक प्रणाली है, जो तरल दाब के सिद्धांत पर काम करती है। इसमें दो भारी प्लेटें होती हैं, जिनके बीच पत्तों या कृषि अपशिष्ट की शीट्स को रखा जाता है। फिर उच्च तापमान और दबाव के माध्यम से उन्हें प्लेट, कटोरी, दोना या चम्मच के आकार में ढाला जाता है।

जलरोधकता और मजबूती

साधारण पत्तों से बनी प्लेटें पानी में जल्दी गल जाती हैं और कमजोर हो जाती हैं। लेकिन जब इन्हें हाइड्रोलिक प्रेस में दबाया और गर्म किया जाता है, तो यह प्रक्रिया न केवल उन्हें एक ठोस और मजबूत संरचना देती है, बल्कि एक हद तक जलरोधकता भी प्रदान करती है। कभी-कभी इन उत्पादों पर प्राकृतिक मोम या कॉर्न स्टार्च आधारित कोटिंग भी की जाती है, जिससे वे अधिक समय तक टिकाऊ और पानी प्रतिरोधी बन सकें।

जीवनशैली और सांस्कृतिक विरासत को भी प्रोत्साहित करते हैं। इस प्रकार, यह गतिविधि सामाजिक, आर्थिक और पारिस्थितिकीय-तीनों दृष्टिकोणों से एक सतत एवं समावेशी विकास का उदाहरण बन रही है।

परंपरा और संस्कृति से जुड़ाव

पत्तों और कृषि अपशिष्ट से बने जैव-अपघटनीय बर्तन (बायोडिग्रेडेबल कटलरी) न केवल पर्यावरण के लिए हितकारी हैं, बल्कि भारतीय समाज की परंपराओं, भावनाओं और सांस्कृतिक मूल्यों से भी गहराई से जुड़े हुए हैं। प्राचीन काल से ही भारत में केले, साल, पलाश, कमल आदि के पत्तों का उपयोग आहार के लिए किया जाता रहा है। इन पत्तों से बने बर्तन केवल आहार परोसने का माध्यम नहीं थे, बल्कि शुद्धता, प्रकृति से जुड़ाव और अतिथि सत्कार की भावना के प्रतीक भी थे।

आज जब प्लास्टिक प्रदूषण एक गंभीर समस्या बन चुका है, तब इन पारंपरिक बर्तनों का पुनः प्रचलन न केवल पर्यावरण संरक्षण में सहायक है, बल्कि यह सांस्कृतिक धरोहर को भी पुनर्जीवित करता है। सार्वजनिक और पारिवारिक आयोजनों जैसे-विवाह, धार्मिक समारोह, यज्ञ, भंडारे आदि में इन बर्तनों का उपयोग शुद्धता और नैतिक जिम्मेदारी का प्रतीक माना जाता है।

इन बर्तनों का निर्माण ग्रामीण महिलाओं और किसानों द्वारा किया जाता है, जिससे उन्हें रोजगार मिलता है और सतत आजीविका के अवसर प्राप्त होते हैं। इस प्रकार, बायोडिग्रेडेबल कटलरी आधुनिक जरूरतों, पारंपरिक मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं का सुंदर समन्वय प्रस्तुत करती है।

पलाश के पत्ते से बनी प्लेट

गन्ने की खोई से तैयार उत्पाद

पर्यावरणीय लाभ

- **प्लास्टिक का विकल्पः** प्लास्टिक से बने बर्तन हजारों वर्षों तक पर्यावरण में रहते हैं और जल, थल एवं वायु को प्रदूषित करते हैं। वहीं, पत्तों से बने बर्तन पूरी तरह से प्राकृतिक हैं और कुछ ही दिनों में नष्ट हो जाते हैं।
- **कृषि अपशिष्ट का पुनः उपयोगः** धान की पराली अक्सर जलाकर नष्ट कर दी जाती है, जिससे प्रदूषण होता है। लेकिन अब इनका प्रयोग बायोडिग्रेडेबल उत्पाद बनाने में किया जा रहा है। यह न केवल अपशिष्ट को उपयोगी बनाता है, बल्कि प्रदूषण भी कम करता है।
- **मिट्टी की उर्वरता बढ़ानाः** ये उत्पाद प्रयोग के बाद जैविक खाद में बदल जाते हैं और मिट्टी की गुणवत्ता को सुधारते हैं।
- **प्राकृतिक रूप से नष्ट होने योग्यः** ये बर्तन कुछ ही सप्ताह में मिट्टी में मिल जाते हैं और कोई प्रदूषण नहीं फैलाते।
- **कम कार्बन उत्सर्जनः** इनके उत्पादन में ऊर्जा की खपत कम होती है, जिससे ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन घटता है।
- **जल स्रोतों को सुरक्षित रखता हैः** प्लास्टिक की तरह यह नदियों और समुद्रों को प्रदूषित नहीं करता।
- **वन्यजीवों के लिए सुरक्षितः** ये बर्तन पशुओं या पक्षियों द्वारा गलती से निगल लिए जाने पर हानिकारक नहीं होते हैं।
- **स्वास्थ्य के लिए सुरक्षितः** इन बर्तनों में कोई रसायन या विषाक्त पदार्थ नहीं होते हैं। इस प्रकार ये आहार के लिए सुरक्षित होते हैं।
- **रोजगार के अवसरः** इन बर्तनों के निर्माण से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ते हैं।
- **सांस्कृतिक संरक्षणः** इन बर्तनों का उपयोग पारंपरिक भारतीय रीति-रिवाजों और प्रथाओं को जीवित रखने में सहायक है।
- **सस्ती और सुलभ सामग्रीः** ये बर्तन किफायती होते हैं और स्थानीय स्तर पर आसानी से उपलब्ध हो सकते हैं।

बायोडिग्रेडेबल कटलरी न केवल एक टिकाऊ विकल्प है, बल्कि यह भविष्य के लिए एक जरूरी भी है। यदि चाहें तो अपने छोटे-छोटे निर्णयों से बड़े परिवर्तन ला सकते हैं। अगली बार जब आप किसी समारोह की योजना बनाएं, तो प्लास्टिक की बजाय पत्तों और कृषि अपशिष्ट से बनी कटलरी का चयन करें। यह न केवल पर्यावरण की रक्षा करेगा, बल्कि आने वाली पीढ़ियों को एक स्वच्छ और सुरक्षित पर्यावरण भी सौंपेगा। ■

अरुणाचल प्रदेश में कुट्टू की लाभकारी खेती

रघुवीर सिंह[1] और **नीलम शेखावत**[2]

कुट्टू, अरुणाचल प्रदेश की पहाड़ियों में उगाई जाने वाली एक पारंपरिक अनाज फसल है, जो आज पोषण, परंपरा और आय का सशक्त संगम बनकर उभर रही है। पूरी तरह ग्लूटेन-फ्री और उच्च प्रोटीन, फाइबर, मैग्नीशियम जैसे पोषक तत्वों से भरपूर यह फसल न केवल मधुमेह एवं हृदय रोगियों के लिए लाभकारी है, बल्कि कम समय में तैयार होकर सीमांत किसानों को कम लागत में बेहतर मुनाफा भी देती है। हिमप्रिया जैसी उन्नत किस्में, जैविक खेती और बढ़ती जैविक बाजार मांग के साथ, कुट्टू की खेती अरुणाचल में पोषण सुरक्षा और सतत आय का नया द्वार खोल सकती है।

पूर्वोत्तर भारत का राज्य अरुणाचल प्रदेश, न केवल अपनी प्राकृतिक सुंदरता और सांस्कृतिक विविधता के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि यहां की पारंपरिक फसलें भी अब नई संभावनाएं दिखा रही हैं। ऐसी ही एक फसल है कुट्टू-जो अब एक पोषक एवं जैविक अनाज के रूप में किसानों के लिए आय का नया स्रोत बन रही है।

कुट्टू कोई साधारण अनाज नहीं है यह एक छद्म अनाज है, यानी गेहूं या चावल की तरह घास वर्ग का नहीं है। इसका आटा और दाना बिल्कुल अनाज की तरह ही उपयोग होता है। कुट्टू का वैज्ञानिक नाम *फगोपाइरम एस्कलेटम* है। यह पूरी तरह ग्लूटेन-फ्री होता है-अर्थात् गेहूं से एलर्जी वाले लोगों के लिए सुरक्षित है।

पोषण से भरपूर

कुट्टू केवल बाजार में महंगे 'हेल्दी फूड' के रूप में नहीं, बल्कि रोजमर्रा के खाने में भी बेहद फायदेमंद है।

यह मधुमेह, उच्च रक्तचाप और हृदय रोगियों के लिए बेहद लाभदायक माना जाता है।

अरुणाचल प्रदेश के कई जिलों में पारंपरिक रूप से कुट्टू की खेती होती रही है, जैसे:

- तवांग, पश्चिम कामेंग, कुरुंग कुमे, पश्चिम सियांग, अपर सुबनसिरी, लोअर दिबांग वैली।

इन इलाकों में यह फसल मुख्य रूप

[1]अखिल भारतीय संभावित फसलों पर समन्वित अनुसंधान नेटवर्क, भाकृअनुप-उत्तर-पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र के लिए अनुसंधान परिसर, अरुणाचल प्रदेश केंद्र, बसर-791101; [2]भाकृअनुप-राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, क्षेत्रीय केंद्र, जोधपुर-342003, (राजस्थान)

सारणी: कुट्टू में पोषक तत्वों की मात्रा

पोषक तत्व	मात्रा (100 ग्राम में)
प्रोटीन	13.3 ग्राम
फाइबर	10 ग्राम
मैग्नीशियम	231 मि.ग्रा.
आयरन	2.2 मि.ग्रा.
कैल्शियम	18 मि.ग्रा.

पर्वतीय क्षेत्रों में लाभकारी कुट्टू की खेती

से खरीफ के बाद की छोटी अवधि में उगाई जाती है, जब जमीन खाली पड़ी होती है।

जलवायु

कुट्टू को ठंडी और आर्द्र जलवायु पसंद है, इसलिए पहाड़ी क्षेत्रों में यह फसल आसानी से उग जाती है।

अवधि

यह 60 से 90 दिनों की एक अल्पकालीन फसल है, जिसे जल्दी बोया और काटा जा सकता है।

मृदा

इसकी खेती के लिए हल्की दोमट मृदा, जिसमें जल निकासी अच्छी हो, उपयुक्त मानी जाती है।

सिंचाई

कुट्टू को बहुत अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती। वर्षा आधारित खेती के लिए यह एक आदर्श फसल है।

उन्नत किस्म

भाकृअनुप द्वारा विकसित की गई 'हिमप्रिया' कुट्टू की एक उन्नत किस्म है। इसके मुख्य गुण निम्न हैं:

- **उच्च उपज:** औसतन 12-15 क्विंटल/हैक्टर।
- **जल्दी पकने वाली:** 80-90 दिनों में फसल तैयार
- **रोग प्रतिरोधी:** लीफ ब्लाइट एवं डाउनी मिल्ड्यू के प्रति सहनशील
- **अनुकूल जलवायु:** उच्च पर्वतीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त
- उत्तम दाना आकार और आटा गुणवत्ता

यह किस्म अरुणाचल प्रदेश जैसे पर्वतीय राज्यों के लिए उपयुक्त है।

खेती के लिए मुख्य घटक

विषय	जानकारी
अवधि	60-90 दिन
बीज दर	40-50 कि.ग्रा./हैक्टर
सिंचाई	वर्षा आधारित या 1-2 सिंचाई
खाद	जैविक खाद (एफवाईएम) या वर्मीकम्पोस्ट
कटाई	जब 80 प्रतिशत दाने भूरे हो जाएं

किसानों को लाभ

- **कम लागत, अच्छा दाम:** यह फसल रासायनिक खाद और कीटनाशकों के बिना भी उगाई जा सकती है, जिससे लागत घटती है।
- **अल्प अवधि की फसल:**यह फसल जल्दी तैयार हो जाती है, जिससे दूसरी फसल के लिए समय मिल जाता है।
- **जैविक बाजार में मांग:** जैविक और हैल्थ प्रोडक्ट्स की बढ़ती मांग से कुट्टू का बाजार मूल्य अच्छा है।

कुट्टू उत्पादन परंपरा एवं पोषण का संगम

उपयोग

- व्रत के समय कुट्टू का आटा बहुत लोकप्रिय है।
- इससे रोटी, पूरी, पकौड़ी, मिठाई आदि उत्पाद बनाए जाते हैं।
- कई जनजातीय समुदाय इसका उपयोग पारंपरिक पेय बनाने में भी करते हैं।
- कुछ स्थानों पर यह धार्मिक अनुष्ठानों में भी प्रयोग होता है।

कुट्टू जैसी फसल अरुणाचल प्रदेश के किसानों के लिए कम भूमि में अधिक लाभ वाली साबित हो सकती है। इससे न केवल पोषण सुरक्षा मिलेगी, बल्कि पहाड़ी क्षेत्रों में जैविक खेती को भी बढ़ावा मिलेगा।

कुक्कुट पालन से आर्थिक सशक्तिकरण

श्रवन कुमार[1] और **स्तुति सिंह**[2]

भारत में पोल्ट्री क्षेत्र बैकयार्ड फार्मिंग एवं छोटे पैमाने के मुर्गी पालन से बदलकर एक अत्यधिक संगठित और एकीकृत कृषि व्यवसाय एवं प्रमुख व्यावसायिक उद्योग में परिवर्तित हो गया है। इसमें आगे विस्तार की काफी संभावनाएं हैं। अब यह ग्रामीण एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रमुख योगदानकर्ता है, जो किसानों और कृषि उद्यमियों के लिए आय और रोजगार के अवसर प्रदान करता है। भारत में अंडों का उत्पादन सालाना लगभग 140 बिलियन होने का अनुमान है, जबकि ब्रॉयलर मांस का उत्पादन लगभग 4.5 मिलियन टन है। पशुपालन और डेरी विभाग (डीएएचडी), भारत सरकार एवं राष्ट्रीय पशुधन मिशन (एनएलएम) विभाग पोल्ट्री फार्मिंग में उत्पादकता और उद्यमिता को बढ़ाने के लिए विभिन्न योजनाओं के माध्यम से पोल्ट्री क्षेत्र को सक्रिय रूप से समर्थन देता है।

मुर्गी पालन एक प्रकार का पशुपालन है, जिसमें मुर्गियों, बत्तखों, टर्की आदि पक्षियों को अंडे और मांस के उत्पादन के लिए पाला जाता है। यह व्यवसाय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह न केवल आहार में प्रोटीन प्रदान करता है, बल्कि रोजगार भी उत्पन्न करता है। इसमें मुख्यत: ब्रॉयलर पालन, लेयर पालन या फिर बैकयार्ड फार्मिंग आते हैं।

ब्रॉयलर पालन मांस उत्पादन के लिए किया जाता है। इसमें मुर्गियों को कम समय में तेजी से वजन बढ़ाने के लिए पाला जाता है। वहीं अंडे उत्पादन के लिए मुर्गियों की व्यवस्था को लेयर पालन कहते हैं। छोटे पैमाने पर घर के पीछे या आंगन में मुर्गियों को पालने की व्यवस्था को बैकयार्ड फार्मिंग कहते हैं।

मुर्गी पालन न केवल ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को रोजगार प्रदान करता है, बल्कि अंडे और मांस के उत्पादन से हुई आय लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाने में एक महत्वपूर्ण साधन हो सकती है। इसके साथ-साथ मुर्गी पालन से निकलने वाले अपशिष्ट का उपयोग जैविक खाद के रूप में किया जा सकता है, जो मृदा की उर्वराशक्ति को बढ़ाने में कारगर है। पशुपालन और डेरी विभाग, भारत सरकार द्वारा मुर्गी पालन व्यवसाय को बढ़ाने हेतु समय-समय पर किसानों को मुर्गी पालन प्रशिक्षण एवं विभिन योजनाओं का लाभ प्रदान किया जा रहा है जैसे कि केंद्रीय कुक्कुट विकास स्कीम के तहत पशुधन विभाग द्वारा किसानों के बड़े समूह को मुर्गी पालन से जुड़ी नई तकनीकों की जानकारी दी जाती है। वहीं पशु चिकित्सकों की मदद से मुर्गी पालन के दौरान होने वाले रोगों की रोकथाम के लिए मुफ्त में दवाइयों का वितरण भी किया जाता है।

लाभकारी मुर्गी पालन के लिए निम्न विषयों की जानकारी का होना आवश्यक है:

बाजार/मार्केट सर्वेक्षण

मुर्गी पालन को व्यवस्थित करने से पहले आसपास की अंडे एवं मांस की मांग, इसका उत्पादन एवं आपूर्ति को गंभीरता से समझना महत्वपूर्ण है। अंडे, चिकन या ब्रॉयलर मीट की मांग के अनुसार ही मुर्गी पालन को अंडे या मांस के उत्पादन के लिए व्यवस्थित करें। ज्यादातर स्टार्ट-अप

[1]पशु विकृति विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, बनारस (उत्तर प्रदेश); [2]पशु विकृति विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर (उत्तराखंड)

के लिए किसान अपने मित्र, रिश्तेदार या पड़ोसी किसान के काम को देखते हैं और उससे फायदा उठाने की उम्मीद करते हैं। यह जरूरी है कि आप संभावित ग्राहकों से बात करने और उनकी बात सुनने के लिए अपना समय निकालें। आसपास के रेस्टोरेंट, होटल, खुली खाने की जगहों पर स्थित अंडे एवं मांस मार्केट का एक सर्वेक्षण करें और जितना संभव हो, उतना मांग का डेटा तैयार करें। इन उत्पादों के मौसमी रुझानों के बारे में सवाल पूछें, जिन्हें आप बाजार में लाने का इरादा रखते हैं। कभी-कभी धारणाएं सर्वेक्षण के नतीजों से मेल नहीं खा सकती हैं। इसलिए मूल योजनाओं को बदलने और नए फैसले लेने के लिए तैयार रहना आवश्यक है।

फार्म का स्थान

किसी भी प्रकार के मुर्गी फार्म को सुचारू रूप से संचालित रखने के लिए स्थान का उचित चयन अति आवश्यक है।

आवास प्रबंधन कुक्कुट में अहम पालन

स्वास्थ्य सुरक्षा

रोग के कारण होने वाली मृत्यु किसान के लाभ में बाधा का काम करती है और लाभ को कम करती है। मुर्गियों में रोग के कई मुख्य कारण हो सकते हैं जैसे कि प्रबंधन संबंधित कमियां, पालन-पोषण संबंधित रोग, बैक्टीरियल संक्रमण, वायरल संक्रमण, प्रोटोजोअन और परजीवी रोग आदि। उचित ब्रूडिंग, तापमान नियंत्रण, वेंटिलेशन, समय पर टीकाकरण तथा आर्द्रता के साथ-साथ गुणवत्तापूर्ण पानी की उपलब्धता और प्रत्येक समय पर्याप्त संतुलित आहार के प्रावधान से रोग से होने वाली मृत्यु दर को बहुत कम किया जा सकता है। टीकाकरण कार्यक्रम का प्राथमिकता के आधार पर चयन किया जाना चाहिए एवं इसका पेशेवर रूप से उन्नत पालन किया जाना चाहिए। मृत पक्षी के शव परीक्षण की जांच उचित निरीक्षक से करवानी चाहिए।

आवास व्यवस्था

उचित आवास व्यवस्था एक लाभकारी मुर्गी पालन व्यासाय के लिए अति आवश्यक है। फार्म हमेशा आयताकार एवं पूर्व-पश्चिम दिशा में होना चाहिए। शेड की साइड की दीवारें 3-5 फीट की ऊंचाई की होनी चाहिए। मुर्गियों का आवास खुला एवं हवादार होने के साथ-साथ वातानुकूल भी होना चाहिए, क्योंकि प्रतिकूल वातावरण में मुर्गियों की अधिक मृत्युदर हो सकती है। अधिक तापमान या गर्मी के मौसम में आवास खुला एवं हवादार होने के साथ उसमें लू से बचने की व्यवस्था होनी चाहिए, जबकि सर्दी के मौसम में आवास ढका होना चाहिए। वैज्ञानिक तौर पर मुर्गियों की आवास व्यवस्था विभिन्न तरीकों से की जा सकती है। इसमें डीप लिटर आवास व्यवस्था सबसे आम है, जहां पूरा फर्श चावल का भूसा या लकड़ी की छीलन से ढका होता है और फीडर और ड्रिंकर जैसे अन्य उपकरण केंद्र में स्थित होते हैं। यह सभी प्रकार के पक्षियों के लिए सबसे उपयुक्त है और पशु कल्याण आवश्यकता के अनुरूप है। बैकयार्ड फार्मिंग के लिए फ्री-रेंज प्रकार आम है, जिसमें मुर्गियों को रात में शेल्टर आवास प्रदान किया जाता है और खुले बाड़े में प्राकृतिक तरीके से चरने और घूमने की स्वतंत्रता दी जाती है।

पोल्ट्री फार्म कहीं भी एवं किसी भी सूखी जमीन पर स्थित हो सकता है। परन्तु यह शहर से दूर थोड़ा बाहर हो, तो ज्यादा ठीक रहता है। वातावरण सुगम होने के अलावा प्रदूषण भी काफी कम होना चाहिए। इसके अलावा बाजार जहां मांस और अंडे दोनों आसानी से बेचे जा सकें, वहां से फार्म की दूरी भी ज्यादा नहीं होनी चाहिए। फार्म बनाते समय ध्यान रखें कि यह खेत के उस हिस्से में हो, जहां पर सड़क की सुविधा उपलब्ध हो तथा वह नदी तटीय भूमि से दूर हो, जहां कभी-कभी बाढ़ और भूस्खलन की समस्या आती रहती है।

पोल्ट्री फार्म का क्षेत्रफल पोल्ट्री फार्मिंग की इकाई पर निर्भर करता है। मुर्गी पालन के लिए कई किसान छोटे फार्म हाउस से शुरुआत करते हैं और इसके लिए लगभग 15,000 से लेकर 30,000 वर्ग फीट तक की जगह का चयन किया जा सकता है, जबकि बड़े स्तर पर शुरुआत करने के लिए लगभग 50,000 वर्ग फीट जगह की जरूरत होती है।

नस्ल का चयन

लाभकारी मुर्गी पालन के लिए मुर्गी की नस्ल का चयन अति आवश्यक है। यदि व्यावसायिक लेयर्स रखना चाहते हैं, तो ऐसी नस्ल का चयन करें, जिसकी तेज विकास दर, कम मृत्यु दर, उच्च उत्पादन एवं रोग की कम दर हो। यदि यह मांस और अंडा उत्पादन दोनों के लिए है, तो उच्च आहार रूपांतरण दक्षता वाली नस्ल और अच्छे स्वादिष्ट एवं कोमल गुणवत्ता वाले मांस की तलाश करें।

अंडा उत्पादन के लिए लेग होर्न्स, रॉड्स आइलैंड रेड्स प्लमोथ रॉक्स जैसी नस्लें उचित हैं। जबकि मांस के लिए फास्ट ग्रोविंग ब्रीड जैसे कि कोर्निश क्रॉस, रोस 308, कोब्ब 500, हब्बार्ड, वेंकोब्ब का चयन करना चाहिए।

हैचरी/आपूर्तिकर्ता का चयन

मुर्गी की नस्ल एवं इसकी आपूर्ति के लिए उचित हैचरी का चयन अति आवश्यक है। हैचरी का चयन करते समय, मुख्य रूप से कई महत्वपूर्ण कारकों जैसे कि हैचरी की पहुंच, हैचरी का ट्रैक रिकॉर्ड, गुणवत्ता, आनुवंशिक विविधता, रोगमुक्त ब्रूड स्टॉक और जैव सुरक्षा प्रोटोकॉल पर ध्यान देना चाहिए। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हैचरी से ही नस्लों को खरीदना चाहिए।

रिकॉर्ड रखना

ज्यादातर किसान अच्छे रिकॉर्ड रखने के महत्व को नजरअंदाज करते हैं। उत्पादन रजिस्टर, लागत रजिस्टर, फीड रजिस्टर, टीकाकरण रजिस्टर, रोग एवं मृत्यु दर रजिस्टर एवं अन्य सभी रजिस्टर को अच्छे से बनाये रखना चाहिए। सबसे ज्यादा लागत आहार में आती है। इसका मतलब है कि इसे प्रति पक्षी, प्रति दिन खिलाए गए ग्राम के स्तर पर तौला जाना चाहिए और उत्पादन दक्षता स्थापित करने के लिए साप्ताहिक आधार पर वजन का नमूना लिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त टीकाकरण का भी अच्छे से रिकॉर्ड रखना चाहिए।

मुर्गी पालन एक लाभदायक एवं टिकाऊ व्यवसाय है, जो ग्रामीण विकास और खाद्य सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। यदि सही तरीके से किया जाए, तो मुर्गी पालन किसानों और उद्यमियों के लिए आय का उत्कृष्ट स्रोत बन सकता है।

पर्यावरण अनुकूल प्राकृतिक खेती

अमरेश चौधरी[1], **राम नारायन सिंह**[2], **गोरक्ष वाकचौरे**[2] और **हरिशा सी.बी.**[2]

“प्राकृतिक कृषि जिसे पारिस्थितिकी कृषि भी कहा जाता है, एक दृष्टिकोण है। फसलों की खेती और पशुपालन करने के लिए प्राकृतिक तकनीकों का प्रयोग करने पर जोर देता है। यह प्रणाली मानवता के साथ में प्रकृति की प्रक्रियाओं के साथ मेल खाती है। यह रासायनिक पदार्थों जैसे-रासायनिक खाद, कीटनाशक और जेनेटिक इंजीनियरिंग वाले बीज पर निर्भरता की बजाय प्राकृतिक पदार्थों का प्रयोग करने का महत्व रखती है। प्राकृतिक कृषि का लक्ष्य है संवर्धनात्मक और पर्यावरण के अनुकूल परिस्थिति बनाए रखना, जो मृदा स्वास्थ्य, जैव विविधता और मानव कल्याण को बढ़ावा देती है। प्राकृतिक कृषि का आधार स्तंभ ‘देसी गाय’ है, जिनका मल-मूत्र ही विभिन्न जैव-उत्प्रेरकों को बनाने में मुख्य भूमिका निभाते हैं।”

विश्व में जलवायु परिवर्तन के साथ-साथ अजैविक तनाव जैसे कि सूखा, बाढ़, पाला, लू आदि का भी प्रकोप लगातार बढ़ रहा है, जिससे खेती करना चुनौतीपूर्ण बनता जा रहा है। खेती करने की लागत में भी अत्यधिक वृद्धि हो रही है। इसके साथ ही किसानों को मुनाफा पाना कठिन होता रहा है। वहीं यूरिया, डीएपी एवं अन्य उर्वरकों तथा रासायनिक कीटनाशकों के लगातार बढ़ते दाम किसानों के लिए ही नहीं अपितु भारत सरकार के लिए भी चिंता का विषय बना हुआ है। एक अनुमान के अनुसार भारत सरकार द्वारा प्रत्येक वर्ष 1.5 लाख करोड़ रुपये की सब्सिडी रासायनिक उर्वरकों पर दी जा रही है। इनके दाम प्रत्येक वर्ष बढ़ते ही जा रहे हैं, जो काफी चिंता का विषय है। इसके अलावा भी रासायनिक खेती के कई दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं, जो पारिस्थितिकी के लिए काफी हानिकारक हैं।

[1]भाकृअनुप-केंद्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा); [2]भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक तनाव प्रबंधन संस्थान, बारामती (महाराष्ट्र)

रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध प्रयोग से मृदा के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में एक ऐसी कृषि पद्धति की आवश्यकता है, जो इन समस्याओं का समाधान कर सके तथा कृषि के सतत विकास को भी बढ़ा सके। अतः यदि प्राकृतिक कृषि का समुचित प्रयोग करें, तो विभिन्न समस्याओं का समाधान करने में सफल हो सकते हैं।

प्राकृतिक कृषि एक कृषि दर्शन है, जो सतत और पुनर्जीवनात्मक खाद्य उत्पादन प्राप्त करने के लिए प्राकृतिक पारिस्थितिकी का अनुकरण करने का प्रयास करती है। देश में प्राकृतिक कृषि पुरातन काल से ही प्रचलित है, जिसका संवर्धन श्री सुभाष पालेकर जी ने विगत कई वर्षों से किया है। इनके द्वारा प्राकृतिक कृषि के कुछ मुख्य सिद्धांतों को महत्व दिया गया है जो निम्न हैं:

संश्लेषित रसायनों का निषेध

प्राकृतिक खेती में पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक रासायनिक खाद, कीटनाशक और अन्य रसायनों का उपयोग न करके वनस्पति आधारित कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है। वानस्पतिक कीटनाशकों का केवल जरूरत पड़ने पर ही थोड़ा उपयोग किया जाता है। इनमें भी गैर-विषैले विकल्पों को प्राथमिकता दी जाती है। अग्निअस्त्र, दशपर्णी, ब्रह्मास्त्र, खट्टी लस्सी, नीमास्त्र आदि कुछ महत्वपूर्ण वानस्पतिक कीटनाशक हैं।

प्राकृतिक कम्पोस्टिंग या आच्छादन

आच्छादन प्राकृतिक कृषि का एक महत्वपूर्ण नियम है। खेती वाली भूमि को फसल अवशेषों या छोटी अवधि वाली अंतरफसलों से पूरा ढक दिया जाता है। इसके अंतर्गत फसल के अवशेष, गोबर,

> **जैविक उर्वरकों से मृदा स्वास्थ्य की वृद्धि**
>
> मृदा के कार्बनिक पदार्थ और सूक्ष्मजीवों को बढ़ावा देना महत्वपूर्ण है। पशु अपशिष्ट, मूत्र या अशोधित मृदा जैसे स्रोतों से प्राप्त जैव उर्वरकों का उपयोग लाभकारी सूक्ष्मजीवों के विकास और गतिविधि को बढ़ाने के लिए किया जाता है जैसे जीवामृत, घन जीवामृत और बीजामृत। इन जैविक घटकों से न केवल मृदा स्वास्थ्य में वृद्धि होती है, बल्कि पर्यावरण संतुलन भी बना रहता है।

कम्पोस्ट और अन्य कार्बनिक सामग्री को शामिल किया जाता है, जो मृदा को समृद्ध कर उर्वराशक्ति को बढ़ाते हैं। आच्छादन भूमि में नमी बनाए रखता है एवं खेती के लिए सिंचाई की आवश्यकता भी कम हो जाती है। यह जीवाणुओं एवं केंचुओं की संख्या को बढ़ाने के लिए कारगर है। साथ ही इसके माध्यम से खरपतवार की रोकथाम भी हो जाती है। अंत में फसल अवशेष विघटित होकर मृदा में जैविक कार्बन को बढ़ाते हैं तथा ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन को घटाते हैं।

वापसा निर्माण

प्राकृतिक कृषि में वापसा निर्माण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसमें मृदा में नमी एवं हवा का संतुलन बनाए रखा जाता है।

प्राकृतिक खेती के मुख्य घटक

जीवामृत

सामग्री: 10 कि.ग्रा. गोबर, 8-10 लीटर गौमूत्र, 1.5-2 कि.ग्रा. गुड़, बेसन, और मृदा आदि।

विधि: सभी सामग्री को 200 लीटर पानी में मिलाकर छाया में 2-3 दिनों तक रखें। प्रतिदिन सुबह-शाम 2 मिनट घोलें।

प्रयोग: सिंचाई के साथ खेतों में डालें, महीने में 1-2 बार।

घन जीवामृत

विधि: 200 कि.ग्रा. सूखे गोबर में 20 लीटर ताजा जीवामृत मिलाकर छाया में सुखाएं, फिर कूटकर पाउडर बना लें।

प्रयोग: बुआई से पहले एक एकड़ खेत की मृदा में मिलाएं।

बीजामृत

सामग्री: 5 कि.ग्रा. गोबर, 5 लीटर गौमूत्र, 50 ग्राम बुझा चूना, मुट्ठीभर मिट्टी आदि।

विधि: 20 लीटर पानी में मिलाकर रातभर रखें, फिर बीज को इसमें भिगोने के बाद अगले दिन बुआई करें।

अग्निअस्त्र

सामग्री: 5 कि.ग्रा. नीम एवं अन्य पत्ते, 20 लीटर गौमूत्र, 500 ग्राम तम्बाकू पाउडर, 500 ग्राम हरी मिर्च, 50 ग्राम लहसुन आदि।

विधि: धीमी आंच पर सभी सामग्री को उबालें। 2 दिन बाद 6 लीटर मिश्रण को 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

नीमास्त्र

सामग्री: 10 कि.ग्रा. नीम पत्ती, 10 कि.ग्रा. गोबर, 10 लीटर गौमूत्र

विधि: तीनों को मिलाकर 2 दिनों तक ढककर रखें। इसे दिन में 2 बार मिलाएं।

दशपर्णी अर्क

सामग्री: 10 विभिन्न प्रकार की पत्तियां, 20 लीटर गौमूत्र, 2 कि.ग्रा. गोबर, अन्य सामग्री जैसे-हल्दी, मिर्च, लहसुन, तम्बाकू आदि।

विधि: 40 दिनों तक छाया में किण्वित करें। इस घोल को छड़ी की सहायता से प्रतिदिन 2 बार हिलाएं।

प्रयोग: 6-8 लीटर अर्क को 200 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

ब्रह्मास्त्र

सामग्री: नीम के पत्ते करंज, सीताफल, अरंडी, धतूरा की पत्तियां और 20 लीटर गौमूत्र आदि।

विधि: धीमी आंच पर उबालकर 48 घंटों तक रखें, फिर छान लें।

प्रयोग: कीट प्रकोप की गंभीरता के अनुसार 100 लीटर पानी में 3-6 लीटर मात्रा को मिलाकर छिड़काव करें।

खट्टी लस्सी

विधि: दूध से दही बनाकर मलाई हटाएं और 3-5 दिनों तक रखें, जब तक फफूंदी की परत न बन जाए।

प्रयोग: इसे पानी में मिलाकर कवकनाशी के रूप में उपयोग करें।

प्राकृतिक कृषि न केवल एक पद्धति है, बल्कि यह परंपरागत ज्ञान और सांस्कृतिक मूल्यों का भी प्रतीक है। यह प्रणाली सतत कृषि विकास को बढ़ावा देती है, पर्यावरण की रक्षा करती है और किसानों की आर्थिक स्थिति को भी सुदृढ़ बनाती है।

'एक स्वास्थ्य मिशन' जैसे राष्ट्रीय कार्यक्रमों में भी प्राकृतिक कृषि की भूमिका अहम हो सकती है। अब समय आ गया है कि फिर से अपने देश की इस पारंपरिक एवं वैज्ञानिक पद्धति को अपनाएं और कृषि में आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ें।

अग्निअस्त्र, नीमास्त्र एवं खट्टी लस्सी का किसानों द्वारा उपयोग

जैव विविधता

कीटनाशक और पोषक तत्व चक्रण को सहायता करने वाले संतुलित पारिस्थितिकीय संतुलन बनाने के लिए फसलों, पशुपालन और वन्य जीवों में विविधता को प्रोत्साहित किया जाता है। प्राकृतिक कृषि में एक विस्तृत फसलों की विविधता और चक्रण महत्वपूर्ण है। कृषि क्षेत्रों को कम से कम 8 विभिन्न फसलों की ओर ध्यान देना चाहिए, ताकि मृदा की उर्वरता को बढ़ावा मिले, कीटों और रोगों से निपटने में मदद मिले और पारिस्थितिकीय संतुलन को मजबूती प्रदान की जा सके।

कपास में गुलाबी सुंडी का प्रबंधन

अजंता बिराह, लिकन कुमार आचार्य, अनूप कुमार और **मुकेश खोखर**

"भारत के कई क्षेत्रों में कपास पर गुलाबी सुंडी एक हानिकारक नाशीजीव कीट के रूप में पुन: उभरकर आ रही है। यह कपास के बीजों को खाकर गंभीर आर्थिक हानि पहुंचाती है। इस कीट का संक्रमण फसल के मध्य तथा देर की अवस्था में होता है। पिछले 6-7 वर्षों से मध्य तथा दक्षिण भारत के साथ-साथ उत्तर भारत में भी बुआई के लगभग 45-60 दिनों के बाद गुलाबी सुंडी का संक्रमण बीटी कपास पर पर भी दिखाई दे रहा है। वर्ष 2014 के बाद से, देश के पूरे कपास उगाने वाले क्षेत्रों में पिंक बॉलवर्म (पीबीडब्ल्यू) का प्रकोप देखा गया। क्राई-टॉक्सिन्स और कीटनाशकों के प्रतिरोध के कारण वर्तमान प्रबंधन प्रथाओं के साथ नियंत्रित नहीं होने पर कीट का प्रकोप बढ़कर एक विकट समस्या बन गया है। पर्यावरण की सुरक्षा के साथ अच्छे फसल उत्पादन के लिए सभी किसानों को नई तकनीकों का इस्तेमाल करके समेकित नाशीजीव प्रबंधन (आईपीएम) अपनाने की आवश्यकता है।"

कपास, भारत के साथ-साथ पूरे विश्व की सबसे महत्वपूर्ण रेशेदार और नकदी फसलों में से एक है। इससे रुई तैयार की जाती है, जिसकी वजह से इसे 'सफेद सोना' भी कहा जाता है।

भारतीय कपास किसानों ने बीटी कपास की खेती के व्यावसायीकरण (मार्च 2002) से वर्ष 2013-14 तक लाभ उठाया है। यह देश की औद्योगिक और कृषि अर्थव्यवस्था में एक प्रमुख भूमिका निभाती है। यह सूती वस्त्र उद्योग को बुनियादी कच्चा उत्पाद प्रदान करती है।

भारत में कपास की खेती विभिन्न मृदा जलवायु और कृषि क्रियाओं द्वारा की जाती है। यह महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, हरियाणा, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश में बड़े पैमाने पर उगाई जाती है। कपास की खेती सिंचित एवं बारानी परिस्थितियों के अंतर्गत की जाती है। भारत के कुल कपास की लगभग 65 प्रतिशत पैदावार बारानी तथा 35 प्रतिशत सिंचित परिस्थितियों के अंतर्गत की जाती है।

कपास के उत्पादन में नाशीजीव कीट तथा रोग मुख्य समस्याएं हैं। बीटी कपास आने से एक तरफ कपास के गंभीर कीटों जैसे-अमेरिकन सुंडी, चितकबरी सुंडी एवं

भाकृअनुप-राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन अनुसंधान संस्थान, राजपुर खुर्द, नई दिल्ली-110068

सिफारिशें

- लम्बी अवधि की देर से पकने वाली संकर एवं देसी किस्मों का चयन न करें।
- उत्तरी क्षेत्र में देर से बुआई (15 मई के बाद) न करें एवं मध्य भारत में 31 मई से पहले बुआई न करें।
- यूरिया उर्वरक का अंधाधुंध प्रयोग न करें।
- सिंथेटिक पायरेथ्रॉइट कीटनाशियों का प्रयोग न करें।
- खेत के पास कपास के अवशेषों के ढेर इकट्ठा न करें।
- खेत में जलभराव न होने दें।

स्वस्थ फसल

तम्बाकू सुंडी जहां कम हुई हैं, वहीं दूसरी तरफ कपास की फसल में बहुत सारे लघु (माइनर) कहलाये जाने वाले चूसक कीट मुख्य श्रेणी में आ खड़े हुए हैं।

गुलाबी सुंडी

गुलाबी सुंडी के वयस्क सुबह एवं सायंकाल में निकलते हैं। ये दिन के समय पौधों के अपशिष्ट या दरार में छुपे रहते हैं। पुष्प गुलाब के आकार में परिवर्तित हो जाता है। इसमें लार्वा होता है, जो बाद में टिंडे में प्रवेश करता है तथा उसके बाद प्रवेश मार्ग बंद हो जाता है। विकासशील हरे बीजकोषों के अन्दर गुलाबी सुंडी मौजूद रहती है। लार्वा अंतर कोष्ठकों के बीच आवागमन करता है, खिले टिंडों में लार्वा द्वारा पहुंचाया गया नुकसान दिखाई देता है। इस कीट का आर्थिक सीमा स्तर 8 वयस्क/ट्रैप लगातार तीन दिनों तक या 10 फीसदी प्रभावित पुष्प, कलिकाएं एवं टिंडे जीवित इल्ली के साथ होता है।

कीट सुरक्षा हेतु वैज्ञानिक परामर्श

गुलाबी सुंडी

स्पलेट, एसपीएलएटी तकनीक

स्पेशलाइज्ड फेरोमोन एंड ल्यूर एप्लीकेशन टेक्नोलॉजी (एसपीएलएटी) एक मोम आधारित फॉर्मूलेशन है। इसमें फेरोमोन निरंतर रिलीज होता रहता है, जो कीट की मैथुन क्रिया में व्यवधान उत्पन्न करता है और कीटों को प्रजनन से रोकता है। यह फेरोमोन मादा कीटों के प्राकृतिक फेरोमोन के उत्सर्जन के समान होता है, जिसके कारण नर कीट भ्रमित हो जाते हैं एवं मादा का पता लगाने में असमर्थ हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप कम मैथुन दर होने के कारण कीट आबादी कम होती जाती है। फेरोमोन आधारित फॉर्मूलेशन जो पेस्ट की तरह का होता है, को छोटी-छोटी बूंद के रूप में प्रति एकड़ 400 से 500 स्थानों पर समान रूप से फसल पर लगाया जाता है। प्रत्येक बूंद द्वारा उत्सर्जित सेक्स फेरोमोन की मात्रा, प्राकृतिक फेरोमोन की मात्रा से कई गुना अधिक होती है, जिसके अत्यधिक शक्तिशाली आकर्षण पैदा होता है। गुलाबी सुंडी के नर पतंगे इन पेस्ट की बूंदों की तरफ मादा समझकर आकर्षित होते रहते हैं।

कपास

नर कीट मादा पतंगा का पता लगाने और मैथुन करने में असमर्थ रहते हैं, जिसके फलस्वरूप निषेचन और प्रजनन की क्रिया प्रभावित होती है। इस प्रकार खेत में गुलाबी सुंडी के आक्रमण से मुक्ति मिलती है। कपास में समेकित नाशीजीव प्रबंधन मानव स्वास्थ्य,पर्यावरण की सुरक्षा के साथ नाशीजीवों द्वारा होने वाले नुकसान को काफी हद तक कम करता है।

प्रबंधन

- बीटी कपास के साथ गैर बीटी कपास को अवश्य लगायें।
- पिछली कपास के अवशेष को खेतों से हटा दें।
- गोदामों में कीटग्रस्त कपास को जमा करके न रखें।
- गुलाबी इल्ली की गतिविधि की निगरानी के लिए बुआई के 45 दिनों के बाद फेरोमोन ट्रैप की स्थापना करें।
- संक्रमण के प्रारंभिक चरण में गिरी हुए कलियों/फूलों/टिंडों का संग्रहण करें और इनका उचित निष्पादन करें।
- गुलाबी सुंडी के प्रबंधन के लिए स्पलेट तकनीक का प्रयोग 400-500 स्थानों पर 125 ग्राम/एकड़ की दर से एसपीएलएटी फॉर्मूलेशन (विशेष फेरोमोन और ल्यूर अनुप्रयोग प्रौद्योगिकी) का उपयोग मासिक अंतराल पर 3-4 बार करें। उपलब्धता के अनुसार परजीवी ट्राइकोग्रामा बैक्ट्रे/1.50 लाख प्रति हैक्टर की दर से फसल में एक सप्ताह के अंतराल में तीन बार छोड़ें।
- आवश्यकतानुसार कीटनाशक का प्रयोग-स्पाइनटोरम 11.7 एससी/0.8 मि.ली./लीटर या प्रोफेनोफॉस 50 ईसी/3 मि.ली./लीटर या एमामेक्टिन बेंजोएट 5 एसजी/0.50 ग्राम/लीटर स्प्रे करें।
- दिसंबर के अंत तक फसल की समाप्ति और फसल अवशेषों को नष्ट करना आवश्यक है।

ताप तनाव में देसी पशुधन की अनुकूलनशीलता

सोहनवीर सिंह

"जलवायु परिवर्तन दुनियाभर में कृषि और पशुधन के लिए एक बड़ा संकट बन गया है। जब पशुओं के शरीर का तापमान सामान्य से 3-4 डिग्री सेल्सियस अधिक हो जाता है, तो यह जल्द ही 'हीट स्ट्रोक, थकावट, हीट सिंकोप, हीट क्रैम्प और अंततः अंग की शिथिलता' का कारण बनता है। यह पहले से ही ज्ञात है कि वर्ष के सबसे गर्म महीनों के दौरान और साथ ही हीटवेव के दौरान पशुधन मृत्यु दर अधिक होती है। भारत के शुष्क क्षेत्र विशेष रूप से सबसे अधिक प्रभावित हैं। बढ़ता तापमान, अप्रत्याशित वर्षा और बार-बार होने वाली मौसम की चरम घटनाएं पशुधन को जीवित रहने और विकास के लिए अनुकूलन करने के लिए बाधा बन रही हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रति पशुधन की अनुकूलता बढ़ाने के प्रयास दुनिया भर में चल रहे हैं, जिनमें ताप-प्रतिरोधी मवेशी की नस्ल विकसित करना, पारंपरिक पशुपालन को बढ़ावा देना तथा चारे के वैकल्पिक स्रोत और किसान प्रशिक्षण शुरू करना शामिल हैं। भारत के स्वदेशी पशुधन इन चुनौतियों का सामना करने के लिए बेहतर रूप से अनुकूल हैं। स्वदेशी पशुधन पीढ़ियों से चरम जलवायु परिस्थितियों में रहने के बाद विकसित हुए हैं।"

बढ़ते तापमान और अप्रत्याशित वर्षा के कारण पशुधन उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। अत्यधिक गर्मी से चारे की मात्रा और गुणवत्ता कम हो जाती है, जिससे पशु शरीर क्रिया बाधित हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप पशुओं के आहार सेवन, दूध उत्पादन और प्रजनन दर में कमी आ जाती है।

प्रधान वैज्ञानिक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001 (हरियाणा)

गर्मी के तनाव से मादा पशुओं के प्रजनन पर असर पड़ता है तथा नर पशुओं में वीर्य की गुणवत्ता कम हो जाती है। जबकि जलवायु परिवर्तनशीलता से रोगों का संकट बढ़ जाता है। इससे संसाधन-सीमित क्षेत्रों में खाद्यान्न की गंभीर कमी उत्पन्न हो सकती है। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए, पशुओं को जलवायु के अनुकूल विकसित करना होगा जैसे-तीव्र गर्मी और सूखे जैसी चरम स्थितियों को सहने और अनुकूलित करने की क्षमता। इसके लिए उनमें प्रासंगिक शारीरिक, व्यावहारिक और आनुवंशिक लक्षण होने चाहिए।

भारत में शुष्क क्षेत्र, इस भूमि क्षेत्र के लगभग 12 प्रतिशत को कवर करते हैं और राजस्थान, गुजरात, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक आदि जैसे क्षेत्रों में फैले हुए हैं। इन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 100 से 500 मि.मी. तक होती है और तापमान 1 से 48 डिग्री सेल्सियस तक होता है।

भारत के देसी मवेशी, भेड़, बकरी और ऊंट इन कठिन जलवायु में रहने के

लिए पीढ़ियों से अनुकूलित हुए हैं। उदाहरण के लिए, इन क्षेत्रों में व्यापक रूप से पाए जाने वाले स्वदेशी पशुओं में अद्वितीय ताप सहनशीलता के गुण होते हैं। इनके शरीर का वजन हल्का होता है तथा इनका सतही क्षेत्रफल बड़ा होता है, जिससे ये उच्च तापमान को सहन कर सकते हैं। इन पशुओं की ताप सहनशीलता आनुवंशिक लक्षणों से भी जुड़ी हुई है, जैसे कि हीट शॉक फैक्टर 1 (HSF1) जीन, जो तनाव के दौरान प्रतिरक्षा और चयापचय नियंत्रण को बढ़ाता है। थारपारकर और ओंगोल नस्ल के मवेशी खराब गुणवत्ता वाला चारा, पानी की कमी और रोग प्रतिरोधक क्षमता के प्रति बेहतर रूप से अनुकूल हैं।

इसी प्रकार, मारवाड़ी, जैसलमेरी, दक्कनी और चोकला भेड़ें शुष्क क्षेत्रों में अपनी सहनशीलता के लिए जानी जाती हैं। ये चारे की तलाश में लंबी दूरी तक चल सकते हैं तथा गर्मी और आहार की कमी के प्रति प्रभावी रूप से अनुकूलित हैं। इन क्षेत्रों में देसी बकरियां एक अन्य पशुधन प्रजातियां हैं, जिन्होंने कुशल ताप-नियामक तंत्र विकसित कर लिया है, जो उन्हें अत्यधिक तापमान का सामना करने में सक्षम बनाता है। जैसलमेरी ऊंट जैसी नस्लें, जो अपनी लंबी, पतली टांगों और दुबले शरीर के लिए जानी जाती हैं, कम से कम पानी के सेवन के साथ गर्म, रेतीले इलाकों में चलने में माहिर हैं। इस तरह के अनुकूलन देसी पशुओं को न केवल जीवित रहने में बल्कि चुनौतीपूर्ण वातावरण में पनपने में सक्षम बनाते हैं।

होलस्टीन फ्रीजियन-ताप तनाव के प्रति संवेदनशील

भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन की भूमिका

भारत में पशुधन संसाधन विशाल है तथा भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन की महत्वपूर्ण भूमिका है। लगभग 20.5 मिलियन लोग अपनी आजीविका के लिए पशुधन पर निर्भर हैं। पशुधन का छोटे कृषक परिवारों की आय में 16 प्रतिशत जबकि समस्त ग्रामीण परिवारों की आय में औसतन 14 प्रतिशत का योगदान है।

पशुधन ग्रामीण समुदाय के दो-तिहाई लोगों को आजीविका प्रदान करता है। यह क्षेत्र भारत में लगभग 8.8 प्रतिशत आबादी को रोजगार भी प्रदान करता है। पशुधन क्षेत्र सकल घरेलू उत्पाद में 4.11 प्रतिशत और कुल कृषि सकल घरेलू उत्पाद में 25.6 प्रतिशत का योगदान देता है। पशुधन जैसे अपनी संबद्ध गतिविधियों के साथ, जो दूध और दूध से बने उत्पाद, मांस और मांस उत्पाद प्रदान करते हैं। यह खाद्य और खाद्य उत्पादों, कच्चे माल और परिष्कृत तथा अपरिष्कृत उत्पादों का एक प्रमुख आपूर्तिकर्ता है।

पशुधन का महत्व

पशुधन क्षेत्र जलवायु परिवर्तन में योगदानकर्ता और संभावित रूप से इसे कम करने वाले दोनों हैं। पशुधन उत्पादन में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन महत्वपूर्ण है, मुख्य रूप से मीथेन, जो जुगाली करने वाले पशुओं में एंटरिक किण्वन के दौरान उत्सर्जित होता है। हालांकि, अनुकूल पशुधन समान उत्पादकता के लिए कम चारा और पानी की आवश्यकता के कारण इन उत्सर्जनों को कम कर सकते हैं। इसके साथ ही मृदा स्वास्थ्य रखरखाव और कार्बन पृथक्करण जैसी टिकाऊ प्रथाओं में योगदान दे सकते हैं। उदाहरण के लिए, नागौरी गाय और खराई ऊंट जैसी कुछ नस्लें कृषि को बढ़ावा देने और पारिस्थितिकी तंत्र को संरक्षित करने में दोहरी भूमिका निभाती हैं। खारी ऊंट, विशेष रूप से, शुष्क भूमि और तटीय पारिस्थितिकी तंत्र दोनों के लिए अनुकूल है और मैंग्रोव जैसी खारी झाड़ियों पर आहार कर सकते हैं। इस तरह के पारिस्थितिक अनुकूलन पशुधन को न केवल जीवित रहने में सक्षम बनाते हैं, बल्कि उनके आवासों में जैव विविधता का भी समर्थन करते हैं।

पशुधन प्रणालियां ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये आय, आहार और कृषि सेवाओं का स्रोत प्रदान करती हैं, जैसे मृदा की उर्वरता के लिए खाद।

लंबे समय तक सूखा और अनियमित वर्षा सहित चरम मौसम की घटनाएं इन प्रणालियों को बाधित करती हैं। इससे अक्सर पशुधन उत्पादकता में कमी, चारे की कमी और पशु रोगों का प्रकोप होता है। जलवायु-अनुकूल पशुधन न केवल इन झटकों के प्रति संवेदनशीलता को कम करते हैं, बल्कि खाद्य सुरक्षा में भी योगदान देते हैं। उदाहरण के लिए, साहीवाल, रेड सिंधी और गिर जैसी मवेशी नस्लें, जो ताप सहनशीलता और दूध उत्पादन के लिए जानी जाती हैं, ग्रामीण परिवारों के लिए पोषण के उत्तम स्रोत प्रदान करती हैं। यही बात बन्नी भैंस के लिए भी सत्य है। यह नस्ल रात्रिकालीन चराई के लिए अनुकूलित है, जो रेगिस्तान में उपलब्ध वनस्पति का अधिकतम उपयोग करती है। इसी प्रकार, कच्छी, जैसलमेरी और मेवाड़ी ऊंट शुष्क अर्थव्यवस्था के लिए अमूल्य संपत्ति हैं, विशेष रूप से उन समुदायों के लिए, जो परिवहन और दूध के लिए उन पर निर्भर हैं।

नीति और अनुसंधान

जलवायु-सहनशील पशुधन के महत्व को पहचानते हुए, अनुसंधान प्रयास अब तेजी से उन आनुवंशिक चिन्हों की पहचान करने की ओर उन्मुख हो रहे हैं, जो इन सहनशील गुणों में योगदान करते हैं। इन गुणों का उपयोग करके बढ़ते तापमान और जलवायु चुनौती के लिए बेहतर अनुकूल

स्वदेशी गोपशु

दूध उत्पादन के लिए साहीवाल, गिर और रेड सिंधी गाय की सबसे ज्यादा पालन की जाने वाली नस्लें हैं। इन पशुओं के बाहरी लक्षण काफी हद तक समान होते हैं। ये पशु आमतौर पर भूरे या धूसर रंग के होते हैं। इनके सींग छोटे होते हैं और माथे पर विशिष्ट उभार होता है। परिपक्व गायों का शारीरिक भार 350 से 400 कि.ग्रा. होता है तथा औसत दूध उत्पादन 3-5 प्रतिशत वसा के साथ लगभग 2000 कि.ग्रा. होता है। थारपारकर नस्ल के पशु आमतौर पर सफेद या हल्के भूरे रंग के होते हैं और साहीवाल और गिर से थोड़े बड़े होते हैं। इनकी दूध देने की क्षमता लगभग समान होती है। कांकरेज, गिर और ओंगोल को मध्य और दक्षिण अमेरिका में निर्यात किया जाता रहा है। इन मवेशियों ने उस क्षेत्र के डेरी उद्योग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हरियाणा उत्तरी भारत की प्रमुख नस्ल है। हरियाणा के बैलों को कृषि कार्यों जैसे हल चलाना, गाड़ी चलाना आदि कार्यों के लिए सबसे अच्छा माना जाता है और गाय प्रति ब्यांत में लगभग 1000 कि.ग्रा. दूध देती हैं।

अनुकूलित सिरोही नस्ल की बकरी

पशुधन विकसित करने में मदद मिल सकती है। इस दृष्टिकोण के माध्यम से, मजबूत अनुकूलित गुणों वाली पशुधन विशेषताओं को आगे बढ़ा सकते हैं, जिससे प्रजातियों की समग्र कठोरता में सुधार हो सकता है।

आनुवंशिक सुधार के साथ-साथ पशुधन प्रबंधन नीतियों को अपनाना भी आवश्यक है। इसमें जलवायु-अनुकूल पद्धतियां शामिल हैं, जैसे संसाधनों के उपयोग को कम करने के लिए झुंड की संरचना को समायोजित करना, पानी और चारे की कमी वाले क्षेत्रों में, छोटी नस्लों को अपनाने या गैर-कृषि गतिविधियों में विविधता लाने से जोखिम कम हो सकता है। छायादार आश्रय, स्प्रिंक्लर जैसी शीतलन प्रणालियां तथा अतिरिक्त इलेक्ट्रोलाइट्स के साथ आहार समायोजन जैसे व्यावहारिक उपाय पशुओं की ताप प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं तथा उत्पादकता बनाए रखने में मदद करते हैं।

भेड़ की अनुकूलित मारवाड़ी नस्ल

उपरोक्त के अतिरिक्त भेद्यता मानचित्रण तैयार करना भी महत्वपूर्ण है। इससे यह पता लगाने में मदद मिल सकती है कि जलवायु परिवर्तनशीलता के कारण कौन से क्षेत्र और पशुधन आबादी सबसे अधिक संकट में हैं।

आशाजनक प्रगतियों के बावजूद, भारत के पशुधन क्षेत्र में जलवायु अनुकूलन को बढ़ावा देने में कई चुनौतियां हैं। आर्थिक विकास और शहरीकरण से पशुधन उत्पादों की बढ़ती मांग के कारण उच्च उत्पादन वाली गैर-देसी पशुधन नस्लों जैसे-होलस्टीन, जर्सी, ब्राउन स्विस, मेरिनो भेड़, बकरियों की विदेशी डेरी नस्लों टोगेनबर्ग, सैनन, फ्रेंच अल्पाइन और न्युबियन में वृद्धि हुई है, जो भारत की जलवायु की चरम सीमाओं के लिए कम अनुकूल हैं। इसके अतिरिक्त, जलवायु-अनुकूल पशुधन प्रबंधन के लिए व्यापक ज्ञान और संसाधनों की कमी के कारण छोटे पैमाने के किसानों के बीच लचीले तरीकों को अपनाने में बाधा उत्पन्न होती है।

नीतिगत दृष्टिकोण से, टिकाऊ पशुधन प्रथाओं को बढ़ावा देने के लिए एकीकृत

समर्थन प्रणालियों की आवश्यकता होती है। इसमें जलवायु-स्मार्ट कृषि (सीएसए) को विकास एजेंडे में शामिल करना, चरम मौसम के लिए पूर्व चेतावनी प्रणाली को लागू करना तथा सीएसए और जलवायु सूचना सेवाओं पर प्रशिक्षण के माध्यम से किसानों की क्षमता का निर्माण करना शामिल है।

स्थानीय पारिस्थितिक स्थितियों और बाजार की जरूरतों के अनुरूप पशुधन प्रजनन कार्यक्रमों को तैयार करने से खाद्य सुरक्षा और किसानों की आजीविका को भी बढ़ावा मिल सकता है, विशेषरूप से उन क्षेत्रों में जो जलवायु-जनित व्यवधानों के प्रति संवेदनशील हैं।

उष्णकटिबंधीय पशुधन गर्मी के तनाव के लिए अच्छी तरह से अनुकूलित हैं, जिसके मुख्यत: निम्न कारण हैं:

मवेशियों की शीतोष्ण नस्लें, जो समशीतोष्ण वातावरण में विकसित हुई हैं, वे अत्यधिक गर्मी की स्थितियों के लिए पूरी तरह से अनुकूलित नहीं हैं। मवेशियों की उष्णकटिबंधीय नस्लें इन वातावरणों के लिए बेहतर अनुकूलन का कारण मुख्य रूप से पसीने की ग्रंथियों की संख्या अधिक होना और उनके सतह क्षेत्र अधिक होने से अधिक पसीना आने की दर से संबंधित है। इसके साथ-साथ कम ऊतक प्रतिरोध और गर्मी के नुकसान के लिए चमकीले और चमकदार बालों के कारण त्वचा में चयापचय गर्मी का त्वरित हस्तांतरण आदि। ये सभी विशेषताएं इन मवेशियों को शीतोष्ण नस्लों की तुलना में शरीर के तापमान को अधिक कुशलता से बनाए रखने में सहायता करती हैं।

जैसलमेरी ऊंट

शरीर के तापमान में वृद्धि के कारण शारीरिक प्रतिक्रियाएं बढ़ जाती हैं। इसके साथ-साथ ग्लूकोज और अमीनो अम्ल ऑक्सीकरण में वृद्धि होती है और फैटी एसिड चयापचय में कमी होती है। अंत:स्रावी तंत्र में परिवर्तन होता है और पर्यावरणीय ताप भार के लिए तनाव प्रतिक्रिया जीन की सक्रियता होती है। गर्म जलवायु में डेरी उत्पादन प्रणालियों के लिए मवेशियों को विकसित करने के लिए क्रॉसब्रीडिंग सिस्टम में उष्णकटिबंधीय नस्लों का उपयोग किया गया है। इन संकर पशुओं की अनुकूलन क्षमता प्रतिकूल आनुवंशिक विशेषताओं के कारण कम रही है। मुख्य लक्ष्य ताप-सहिष्णु जीनों की उष्णकटिबंधीय नस्लों में पहचान कर और उन्हें शीतोष्ण नस्लों में शामिल करना चाहिए।

बेहतर ताप सहनशीलता

उष्णकटिबंधीय नस्ल के पशुओं में शरीर के वजन की प्रति इकाई कम ऊष्मा उत्पादन होती है। पसीने की ग्रंथियों का उच्च घनत्व वाष्पीकरण के माध्यम से गर्मी के नुकसान को बढ़ाता है और छोटे, चिकने बाल आसपास की हवा में संवहन की सुविधा प्रदान करते हैं। छोटे आकार का शरीर और उच्च सतह क्षेत्र थर्मल संतुलन को बनाए रखने में मदद करते हैं।

उष्णकटिबंधीय देशों में पाई जाने वाली मवेशियों की नस्लें चिचड़ियों और चिचड़ियों से होने वाले रोगों से प्रतिरोधी होती हैं। उष्णकटिबंधीय पशुओं में त्वचा की

ताप तनाव के प्रति अनुकूलन

पशु उत्पादकता यानी दूध और ऊन उत्पादन चयापचय प्रक्रियाओं का एक परिणाम है, जो पशुओं के शरीर में गर्मी उत्पन्न करते हैं। इसलिए, पशु उत्पादकता को एक ऊष्मा विनिमय प्रणाली के रूप में देखा जा सकता है। इसमें पशु अपने चयापचय के माध्यम से गर्मी पैदा करते हैं और पर्यावरण के साथ गर्मी का आदान-प्रदान करते हैं। पशु होमियोथर्मिक प्रजातियां हैं (यानी वे अपने शरीर के तापमान को एक संकीर्ण पर्यावरण के तापमान सीमा के भीतर नियंत्रित करते हैं)। शरीर का तापमान चयापचय गर्मी उत्पादन और शरीर से गर्मी के नुकसान द्वारा नियंत्रित होता है। पर्यावरणीय ताप तनाव के अनुकूलन में चयापचय गर्मी शामिल हो सकती है, जो रखरखाव और उत्पादन प्रक्रियाओं में विकसित होती है। इसके साथ ही शरीर से गर्मी का नुकसान भी होता है। शरीर में उत्पन्न गर्मी का उपयोग शरीर में तापमान के नियंत्रण में किया जाता है। आवश्यक मात्रा से अधिक मात्रा वाष्पीकरण और गैर-वाष्पीकरणीय मार्गों द्वारा पर्यावरण में जाती है। पशुओं से नमी का वाष्पीकरण पसीने और हांफने के माध्यम से होता है। पसीने की दर, पसीने की ग्रंथियों के घनत्व, उनकी आकृति और जल हस्तांतरण क्षमता पर निर्भर करती है। गैर-वाष्पीकरणीय ऊष्मा हानि भी त्वचा से आसपास की हवा में ऊष्मा हस्तांतरण के रूप में होती है। यह काफी हद तक त्वचा से हवा के तापमान अंतर, शरीर की सतह के पास हवा के प्रवाह, आने वाली विकिरणित गर्मी, आसपास की हवा में नमी की मात्रा और साथ ही बालों की विशेषताओं द्वारा निर्धारित होती है।

गतिविधियों द्वारा चिचड़ियों को दूर भगाने की क्षमता होती है। जब पशु चिचड़ी लार्वा से संक्रमित होते हैं, तो शीतोष्ण नस्ल के मवेशियों की तुलना में उष्णकटिबंधीय पशुओं में कम लार्वा चिचड़ियों में विकसित होते हैं। उष्णकटिबंधीय मवेशियों में कई अन्य रोगों के प्रति भी एक निश्चित सीमा तक प्रतिरोध क्षमता होती है।

उष्णकटिबंधीय मवेशियों के छोटे शरीर आकार, कम चयापचय दर और कुशल पाचन एवं आहार रूपांतरण दक्षता के कारण इन पशुओं की पोषण संबंधी आवश्यकताएं कम हैं।

श्वसन प्रणाली के माध्यम से गर्मी का नुकसान

शीतोष्ण कटिबंधीय नस्लों के मवेशियों और भैंसों में उष्णकटिबंधीय नस्लों की तुलना में कम संख्या में तथा कम सक्रिय पसीने की ग्रंथियां होती हैं। इसलिए ये पशु श्वसन तंत्र के माध्यम से गर्मी को वाष्पित कर देते हैं। पसीने की तुलना में श्वसन तंत्र के माध्यम से गर्मी का नुकसान कम प्रभावी होता है।

पसीने की ग्रंथि की विशेषताएं

पसीने की दर परिवेशी आर्द्रता से संबंधित है। उष्णकटिबंधीय नस्लों के मवेशी समशीतोष्ण और संकर नस्लों की तुलना में अधिक पसीना पैदा करते हैं।

बालों का आवरण

गर्म जलवायु के अनुकूल होने में बालों के आवरण की मोटाई, प्रति इकाई सतह पर बालों के वजन के साथ, शरीर की सतह से गैर-वाष्पीकरणीय गर्मी के नुकसान का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। बालों का आवरण फोटोपीरियड से काफी प्रभावित होता है, जो बालों के आवरण में मौसमी परिवर्तनों को नियंत्रित करता है (यानी, लंबे भारी सर्दियों के आवरण का झड़ना और उसके स्थान पर पतले और हल्के गर्मियों के आवरण का आना)।

परिणामों से पता चलता है कि उच्च अक्षांशों पर फोटोपीरियड आयाम में अधिक परिवर्तन रोमावरण परिवर्तनों के प्रेरण के लिए एक सख्त सीमित कारक नहीं हैं। निरंतर फोटोपीरियड पर पशुओं के उच्च तापमान के संपर्क में आने से बालों के गुणों में इसी तरह के बदलाव हुए। बालों के गुणों में फोटोपीरियड और तापमान-प्रेरित परिवर्तन तापीय संतुलन बनाए रखने की क्षमता को प्रभावित करते हैं। रोमावरण विशेषताएं

ताप सहनशीलता में प्रभावी देसी पशुपालन

त्वचा और मलाशय के तापमान के साथ अच्छी तरह से सहसंबद्ध होती हैं। पोषण भी बालों के कोट की विशेषताओं को प्रभावित करता है। सीमित पोषण ने सर्दियों के प्रकार के रोमावरण के निर्माण को प्रेरित किया, जिसने गर्मी सहनशीलता को कम कर दिया है। अत: फोटोपीरियड, तापमान और पोषण, रोमावरण की विशेषताओं को निर्धारित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बालों के कोट की विशेषताओं में नस्ल के अंतर को भी प्रलेखित किया गया है। बोस इंडिकस (रेड सिंधी और साहीवाल) में वर्ष के सभी मौसमों के दौरान समशीतोष्ण और डेरी नस्लों के साथ उनके क्रॉस की तुलना में छोटे और हल्के बाल थे। हल्के बाल वाले आवरण केवल बोस इंडिकस नस्लों तक ही सीमित नहीं हैं। यह विशेषता सेनेपोल मवेशियों में भी मौजूद है, जो पश्चिम अफ्रीकी के वंशज हैं। चिकने बाल वाला जीन, जो इसके वाहकों को चिकने बाल प्रदान करता है, होलस्टीन में डाला गया। इससे उनकी ताप सहन करने की क्षमता में सुधार हुआ।

दूध की पैदावार और गर्मी का तनाव

गर्मी सहनशीलता ऊपरी और निचले महत्वपूर्ण तापमान पर निर्भर करती है, जो थर्मल आराम सीमा को परिभाषित करते हैं। डेरी गायों के लिए ऊपरी महत्वपूर्ण तापमान, जिसके ऊपर शरीर का तापमान बढ़ना शुरू हो जाता है, 25 से 26 डिग्री सेल्सियस की सीमा में दर्ज किया गया, जो दूध की पैदावार में अंतर को दर्शाता है। देसी मवेशियों के लिए निम्नतम महत्वपूर्ण तापमान लगभग 15 डिग्री सेल्सियस है और इस तापमान से नीचे, ताप नियमन प्रक्रिया शुरू हो जाती है। दूध उत्पादन, चयापचय दर के साथ-साथ बालों द्वारा तापीय सुरक्षा और मौसम दोनों पर अत्यधिक निर्भर है। ■

निवेदन

लेखक बंधु *खेती* पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ सिर्फ निम्न पोर्टल पर ही अपने मोबाइल नम्बर के साथ भेजें। ध्यान रखें कि फोटो जेपीजे फॉर्मेट में और उच्च रेज्योल्यूशन की हों। लेख में अधिकतम 1200 शब्दों की संख्या रखने का प्रयास करें। इसके अतिरिक्त सुझाव और प्रतिक्रियाएं भी भेज सकते हैं।

हमारा पोर्टल है :
epatrika.icar.org.in

–संपादक

कीट प्रबंधन हेतु सौर आधारित एलईडी प्रकाश जाल

नीलेश रायपुरिया[1] और **पी.डी. सिंह**[2]

"रासायनिक कीटनाशकों पर पूरी तरह से निर्भरता के कारण कई दुष्प्रभाव सामने आए हैं, जैसे-कीटों का फिर से उभरना, कीटनाशकों से प्रतिरोध और द्वितीयक कीटों का प्रकोप, साथ ही पर्यावरण प्रदूषण की समस्याएं आदि। एकीकृत पादप स्वास्थ्य प्रबंधन (आईपीएचएम) में संवर्धन, यांत्रिक, जैविक और आवश्यकता आधारित रासायनिक नियंत्रण उपाय शामिल हैं। शुरुआती चरण में ही कीटों की उचित निगरानी और नियंत्रण करना सबसे महत्वपूर्ण हो जाता है। हाल ही में, प्रकाश जाल भौतिक कीट नियंत्रण और प्रभावी पर्यावरण अनुकूल नियंत्रण में आवश्यक उपकरणों में से एक बन गया है। कीट 350 से 700 एनएम तक की तरंग दैर्ध्य में प्रकाश को समझ सकते हैं और उस पर प्रतिक्रिया कर सकते हैं। कई कीट प्रजातियां, जिनमें से अधिकांश रात्रिचर हैं, सकारात्मक रूप से प्रकाशपोषी मानी जाती हैं और बड़ी संख्या में कृत्रिम प्रकाश की ओर आकर्षित होती हैं। प्रकाश जाल एक महत्वपूर्ण आईपीएचएम उपकरण है। इसका उपयोग आमतौर पर कीटों की आबादी की निगरानी और नियंत्रण करने के लिए किया जाता है। एक वयस्क पतंगे को आकर्षित करने और मारने से लगभग 300-400 कीट संतानें सीमित हो जाती हैं। प्रकाश जाल, कीटों के प्रकोप का पूर्वानुमान लगाने में भी मदद करता है। कई प्रकार के जालों में से, प्रकाश जाल का उपयोग कृषि के क्षेत्र में आमतौर पर किया जा रहा है।"

[1]सहायक प्राध्यापक; [2]वैज्ञानिक-कीटशास्त्र विभाग, आर.वी.एस.के.वी.वी-बी.एम. कृषि महाविद्यालय, खंडवा (मध्य प्रदेश)

फोटोट्रॉफिक वयस्क मैक्रो-लेपिडोप्टेरान कीट जैसे-पीला तनाछेदक, बॉलवर्म, तंबाकू कैटरपिलर, फॉल आर्मीवर्म, सफेद मक्खियां और एफिड्स आदि कीट पीले रंग की ओर आकर्षित होते हैं एवं थ्रिप्स, लीफ माइनर मक्खियां आदि नीले चिपचिपे जाल की ओर आकर्षित होती हैं।

वर्तमान में केवल एक बार उपयोग किए जाने वाले पीले/नीले चिपचिपे जाल ही उपयोग में हैं। ये चिपकने वाले जाल केवल 8-10 दिनों तक ही प्रभावी रूप से उपयोग किए जा सकते हैं और फिर इन जालों को बनाने के लिए इस्तेमाल की गई प्लास्टिक शीट बेकार हो जाती है। चिपचिपे जालों की कम अवधि के कारण, उनका उपयोग सीमित है और किसानों के

सिफारिशें

- **उचित स्थान:** सौर प्रकाश जाल को ऐसी ऊंचाई पर रखें, जहां यह कीटों को प्रभावी रूप से आकर्षित कर सकें। अधिकांश फसलों के लिए, यह आमतौर पर पौधे के छत्रक के ठीक ऊपर होता है। साथ ही यह भी सुनिश्चित करें कि ट्रैप को अन्य प्रकाश स्रोतों से दूर रखा गया है, जो इसके साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं।
- **नियमित निगरानी:** पकड़े गए कीटों के प्रकार और संख्या की निगरानी के लिए नियमित रूप से जाल की जांच करें। इससे इसकी प्रभावशीलता का आकलन करने और जरूरत पड़ने पर कीट नियंत्रण रणनीति को समायोजित करने में मदद मिलेगी।
- **सफाई और रखरखाव:** संग्रह ट्रे को नियमित रूप से खाली करके और प्रकाश स्रोत को पोंछकर ट्रैप को साफ रखें। यह सुनिश्चित करना है कि उपकरण कुशलतापूर्वक काम करना जारी रखें।
- **समय:** रात के समय ट्रैप का उपयोग करें, जब यह कीटों को आकर्षित करने में सबसे प्रभावी होता है। सोलर पैनल दिन के दौरान चार्ज होगा, जिससे यह सुनिश्चित होगा कि रातभर प्रकाश चालू रहे।

बीच स्वीकार्यता कम है। एकल उपयोग वाले चिपचिपे जाल भी लागत प्रभावी नहीं हैं और लंबे समय तक खेत में अप्रयुक्त अपशिष्ट के रूप में पड़े रहते हैं। इससे प्रदूषण होता है और खेत में सिंचाई मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं।

स्थिति निर्धारण और स्थापना

सौर प्रकाश जाल को दिन के समय सूर्य की गति के संबंध में दक्षिण-पूर्व दिशा में सही कोण पर रखा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह भी सुनिश्चित करें कि वृक्षों या अन्य ऊंची वस्तुओं या चीजों की कोई छाया पैनल पर सूर्य की किरणों को बाधित न करे, ताकि जाल के सौर पैनल द्वारा अधिकतम मात्रा में सूर्य के प्रकाश को अवशोषित किया जा सके और बैटरी अधिकतम संभव मात्रा में बिजली संग्रहित कर जाल रात के दौरान लंबे समय तक काम कर सके।

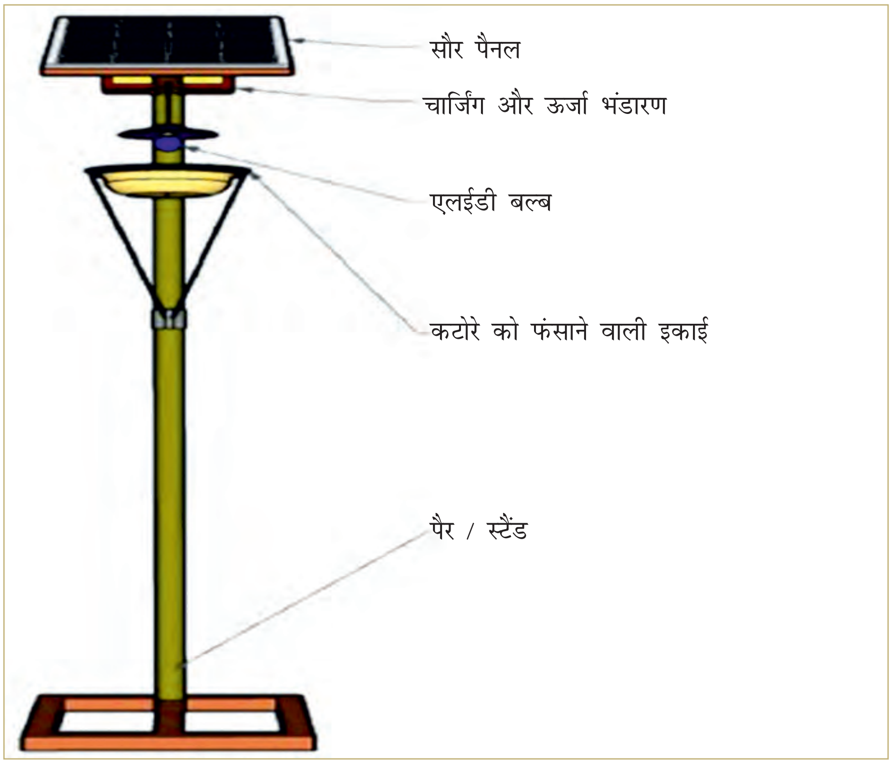

सौर प्रकाश जाल का विशिष्ट आरेख

सारणी: सौर-आधारित एलईडी प्रकाश जाल

घटक	विशेषताएं
स्वचालित नियंत्रण	डीसी 12V (शॉर्ट सर्किट, बिजली के झटके का कोई खतरा नहीं)
सौर पैनल	12 V/10W, 6V/3W, 6V/3W
बैटरी	डीसी 12.8V, 7.5I, रिचार्जेबल बैटरी
लैंप	डीसी 12V/8W
उत्पाद का प्रकार	पर्यावरण के अनुकूल
ऊर्जा का प्रकार	सौर ऊर्जा
बैटरी चार्जिंग घंटे	8-10 घंटे
कार्य घंटे	शाम 6 बजे से सुबह 5 बजे तक

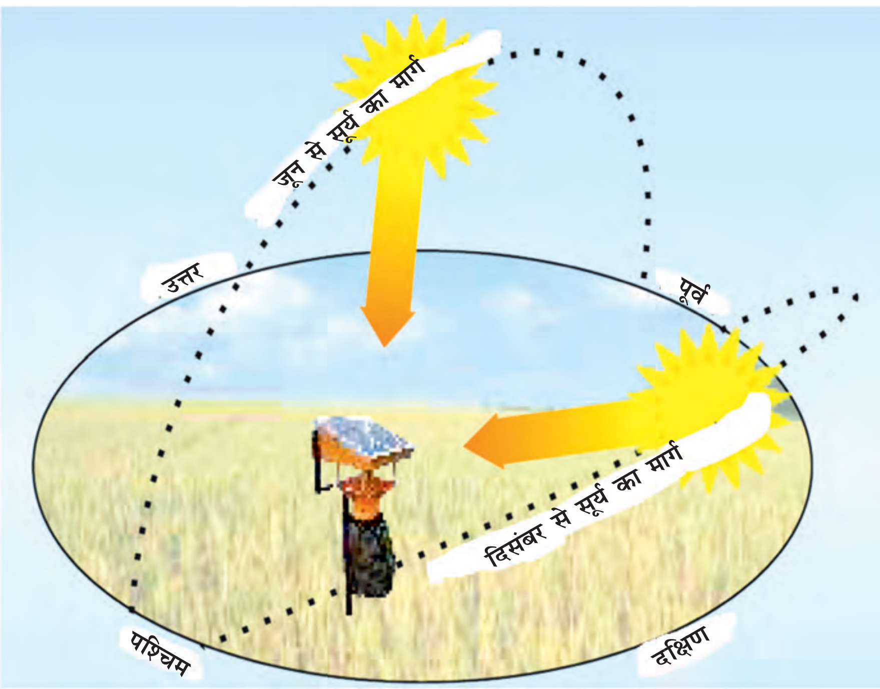

सौर प्रकाश जाल की दिशा का निर्धारण

खेत में उड़ने वाले कीटों को नियंत्रित करने के लिए उसके पास या भीतर प्रकाश जाल स्थापित करें और प्रकाश स्रोत को फसल की कैनोपी से 60 सें.मी. ऊपर रखें। खंभों को जमीन पर मजबूती से टिकाएं, दीपक या बल्ब को फ्रेम पर जमीन से पांच मीटर की दूरी पर लगाएं। रोजाना सुबह फंसे हुए कीटों को इकट्ठा करें और लाभकारी कीटों को फसल के वातावरण में छोड़ दें। मुख्य फसलों जैसे-चावल, मक्का, अरहर, चना, मूंग, सरसों, आम, नीबू, टमाटर एवं कपास आदि में निगरानी के उद्देश्य से 1 ट्रैप प्रति हैक्टर की दर से अनुशंसित किया जाता है।

सौर प्रकाश जाल के लाभ

भारत में, जहां कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, सौर प्रकाश जाल बेहद उपयोगी साबित हो रहा है। देश की विविध जलवायु और व्यापक कृषि गतिविधियों का मतलब है कि कीट नियंत्रण किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय है। सौर प्रकाश जाल के साथ, भारतीय किसानों के पास अब हानिकारक रसायनों पर निर्भर हुए बिना कीटों के प्रबंधन के लिए एक टिकाऊ, लागत प्रभावी और कुशल समाधान तक पहुंच की जा सकती है।

कीट नियंत्रण

सौर प्रकाश जाल का प्राथमिक उपयोग कीट नियंत्रण है। कीट स्वाभाविक रूप से प्रकाश की ओर आकर्षित होते हैं, विशेष रूप से पराबैंगनी (यूवी) प्रकाश, यही कारण है कि सोलर लाइट ट्रैप इतने प्रभावी हैं। कीटों को ट्रैप की ओर आकर्षित करके, ये उपकरण

उपकरण का प्रभावी उपयोग

दिन के समय बैटरी सौर पैनल द्वारा अवशोषित सूर्य प्रकाश से चार्ज होती है और इलेक्ट्रॉनिक सर्किट द्वारा विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित होकर बैटरी में संग्रहित हो जाती है। रात के समय, यह संग्रहित ऊर्जा ट्रैप में लगे लाइट और पंखे द्वारा उपयोग की जाती है। अंधेरा होते ही लाइट और पंखा स्वत: चालू हो जाते हैं और ये चार से पांच घंटे तक काम करते हैं। हानिकारक रात्रिचर या रात में उड़ने वाले कीट, जो इस समय सबसे अधिक सक्रिय होते हैं, एलईडी द्वारा उत्सर्जित पराबैंगनी प्रकाश से आकर्षित होते हैं। फनल क्षेत्र में प्रवेश करते हैं और इमल्सीफाइड पानी के टब में गिर जाते हैं। जब वे बैग या पानी के टब में फंस जाते हैं, अंतत: थकावट और आहार की कमी से मर जाते हैं।

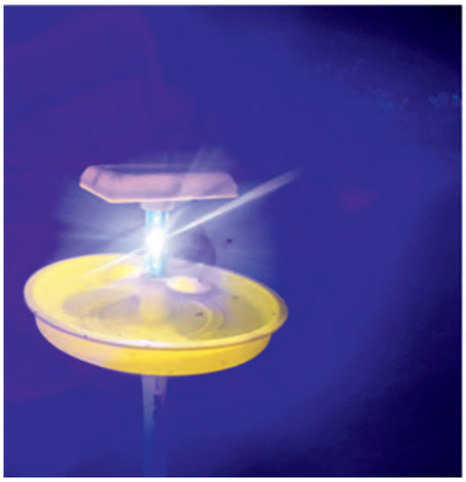

प्रकाश का प्रभाव रात और दिन के समय

हानिकारक कीटों जैसे-पतंगों और भृंगों की आबादी को काफी हद तक कम कर सकते हैं।

पर्यावरण के अनुकूल कृषि

सौर प्रकाश जाल के प्रमुख लाभों में से एक पर्यावरण के अनुकूल कृषि में इसका योगदान है। पारंपरिक कीटनाशक, प्रभावी होते हुए भी लाभकारी कीटों को नुकसान पहुंचा सकते हैं, मिट्टी और पानी को दूषित कर सकते हैं और मनुष्य के लिए स्वास्थ्य जोखिम उत्पन्न कर सकते हैं। दूसरी ओर, सौर प्रकाश जाल एक रसायनमुक्त समाधान है, जो पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए बिना विशिष्ट कीटों को लक्षित करता है।

लागत प्रभावी समाधान

सौर प्रकाश जाल का एक और महत्वपूर्ण लाभ इसकी लागत-प्रभाविता है। हालांकि शुरुआती निवेश रासायनिक कीटनाशकों की खरीद से ज्यादा हो सकता है, लेकिन लंबी अवधि में बचत काफी ज्यादा होती है। एक बार स्थापित होने के बाद, इस जाल को न्यूनतम रखरखाव की आवश्यकता होती है और कोई अतिरिक्त ऊर्जा लागत नहीं होती है। ये जाल पूरी तरह से सौर ऊर्जा पर निर्भर होते हैं। समय के साथ, इससे परिचालन लागत कम होती है और किसानों के लिए निवेश पर ज्यादा लाभ मिलता है।

कीटनाशक प्रतिरोध को कम करना

समय के साथ, कीट रासायनिक कीटनाशकों से प्रतिरोध विकसित कर सकते हैं, जिससे रसायन कम प्रभावी हो जाते हैं। इससे रासायनिक उपयोग में वृद्धि का चक्र शुरू हो जाता है, जिसका पर्यावरण और फसल स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है। अपनी कीट नियंत्रण रणनीतियों में सौर प्रकाश जाल को शामिल करके, किसान रासायनिक कीटनाशकों पर अपनी निर्भरता कम कर सकते हैं, जिससे कीटनाशक प्रतिरोध के विकास को धीमा किया जा सकता है।

गैर-लक्ष्य प्रजातियों की रक्षा करना

रासायनिक कीटनाशकों का अक्सर एक व्यापक स्पेक्ट्रम होता है, जिसका अर्थ है कि वे हानिकारक और लाभकारी दोनों कीटों को मार सकते हैं। यह पारिस्थितिक संतुलन को बाधित कर सकता है और मधुमक्खियों जैसे-परागणकों में कमी ला सकता है, जो फसल उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण हैं। सौर प्रकाश जाल अधिक चयनात्मक होते हैं, मुख्य रूप से कीटों को आकर्षित करते हैं और उन्हें फंसाते हैं। जबकि गैर-लक्षित प्रजातियों को नुकसान नहीं पहुंचाते हैं। इससे जैव विविधता को बनाए रखने में मदद मिलती है और एक स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र को बढ़ावा मिलता है।

यह उपकरण अपने पर्यावरण के अनुकूल-स्वभाव, किसानों और कृषि विशेषज्ञों दोनों की कम लागत की भागीदारी के लिए महत्वपूर्ण माना जा सकता है। सौर प्रकाश जाल मॉडल निकट भविष्य में रासायनिक कीटनाशकों के न्यूनतम उपयोग के साथ धान, मक्का, दलहनी फसलों, सब्जियों, फलों, बागवानी फसलों जैसी सभी फसलों के विभिन्न कीटों के नियंत्रण के लिए बहुत प्रभावी होगा। सौर प्रकाश जाल पूरी तरह से स्वचालित है। अंधेरा होने पर स्वत: चालू हो जाता है। बड़े या छोटे और विशेष रूप से हानिकारक कीट जो रात के समय बहुत सक्रिय होते हैं, यह सभी प्रकार के उड़ने वाले रात के कीटों के खिलाफ बहुत प्रभावी है। इसका पराबैंगनी प्रकाश दूर से कीटों को आकर्षित करता है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यह प्रमुख फसल कीटों के नियंत्रण के लिए सबसे अच्छा आईपीएचएम उपकरण है।

सूचना

ग्राहकों से निवेदन है कि वे *'खेती'* पत्रिका हेतु अपना चंदा समय से पूर्व भेजने की व्यवस्था करें, ताकि पत्रिका समय पर और लगातार मिलती रहे। यदि आपका पता बदल गया है, तो उसकी तुरंत सूचना दें। इसके लिए अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करें।

व्यवसाय प्रभारी
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)
कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा,
नई दिल्ली-110012

श्रीअन्न फसलों में समेकित रोग प्रबंधन

संजीव कुमार[1], **सी.एस. आजाद**[1], **देवेन्द्र मंडल**[1] और **राकेश कुमार**[2]

भारत में उगाई जाने वाले श्रीअन्न फसलों के अन्तर्गत सामान्यत: ज्वार, बाजरा, सांवा, कोदो, कुटकी तथा रागी प्रमुख हैं। ये श्रीअन्न अनेक लाभकारी गुणों से परिपूर्ण होने के साथ ही पोषक तत्वों के मामले में पारंपरिक खाद्यान्न गेहूं और चावल से कई गुणा बेहतर होते हैं, इसलिए इन्हें पोषक अनाज कहा जाने लगा है। एक ओर जहां कई श्रीअन्न में प्रोटीन का स्तर गेहूं के लगभग बराबर है वहीं विटामिन (खासतौर पर विटामिन 'बी'), लौह, फॉस्फोरस तथा अन्य कई पोषक तत्वों के मामले में उससे बेहतर हैं। इन फसलों को अधिक सूखा, उच्च तापमान एवं अम्लीयता सहनशील होने के कारण उन क्षेत्रों में भी आसानी से उगाया जा सकता है, जहां मक्का या गेहूं नहीं उगाये जा सकते हैं। श्रीअन्न की पहुंच आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग तक होने के कारण ये फसलें सभी आय वर्ग के लोगों को पोषण प्रदान करने के साथ-साथ वर्षा आधारित कृषि प्रणालियों का जलवायु अनुकूलन कृषि में एक आवश्यक भूमिका निभाती हैं। इस प्रकार इन फसलों का महत्व खाद्य सुरक्षा के लिए अत्यधिक है, परंतु ये फसलें भी कुछ रोगों से प्रभावित हो जाती हैं, जिसका सीधा प्रभाव उपज पर पड़ता है। अत: उचित एवं समेकित रोग प्रबंधन से इन फसलों की गुणवत्ता और उत्पादन दोनों में सुधार किया जा सकता है।

श्रीअन्न फसलें कई रोगों से प्रभावित होती हैं, जिसका समय पर उपचार कर फसल को नुकसान से बचाकर भविष्य की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है। पोषक अनाज में लगने वाले प्रमुख रोग निम्न हैं:

तुलासिता या हरित बाली रोग

यह बाजरे की फसल का प्रमुख रोग है। इस रोग में सर्वप्रथम 15-20 दिनों की आयु के पौधों की पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। पत्तियों की नीचे की सतह पर कवक की सफेद वृद्धि दिखाई देती है। पत्तियों पर एक-दूसरे के समानान्तर पीली धारियां बन जाती हैं। रोग की उग्रता के साथ धारियां भूरे रंग की हो जाती हैं। पत्तियां भूरी होकर सिरे से लम्बाई में चिथड़ों में फट जाती हैं तथा सिकुड़ जाती हैं। इस रोग के प्रमुख लक्षण बाजरे की बाली पर दिखाई देते हैं। इसमें दानों की जगह पूरी बाली या निचले भाग में छोटी ऐंठी हुई हरी पत्तियों जैसी संरचनाओं में परिवर्तित हो जाती हैं। इसी लक्षण की

[1]पौधा रोग विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर-813210 (बिहार); [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक, भाकृअनुप का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना-800014 (बिहार)

तुलासिता या हरित बाली रोग

वजह से इस रोग को हरित बाली रोग से जाना जाता है।

प्रबंधन

- रोग प्रतिरोधी किस्मों जैसे आरसीबी 2, हाइब्रिड-आईसीएमएच-88088, एचबी-5, एनएचबी-10, एनएचबी-14 की ही बुआई करें।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिये।
- खेत में रोगग्रस्त पौधे दिखाई देते ही उखाड़कर जला दें या गड्ढा खोदकर दबा देना चाहिए।
- खेत में गोबर की खाद एवं उर्वरकों का सही मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।
- फसल में रोग दिखाई देते ही मेटालेक्सिल+मैंकोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

पत्ती धब्बा रोग

इस रोग से संक्रमित पौधे की पत्तियों पर आंख के समान या धब्बे बन जाते हैं, जो मध्य में धूसर एवं किनारों पर पीले-भूरे रंग के होते हैं। अनुकूल वातावरण में ये धब्बे आपस में मिल जाते हैं एवं पत्तियों को झुलसा देते हैं। बालियों की ग्रीवा एवं अंगुलिका पर भी फफूंद का संक्रमण होता है। ग्रीवा का पूरा या आंशिक भाग काला पड़ जाता है, जिससे बालियां संक्रमित भाग से टूटकर लटक जाती हैं या गिर जाती हैं। अंगुलिका भी आंशिक या पूर्ण रूप से संक्रमित होने पर सूख जाती हैं, जिसके कारण उपज की गुणवत्ता एवं मात्रा प्रभावित होती है।

प्रबंधन

- रोगग्रस्त बाली को जला दें।
- वीटावेक्स 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।
- लक्षण दिखाई देते ही हेक्साकोनाजोल 0.1 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें।
- जैव रसायन स्यूडोमोनास फ्लोरेसेन्स (0.2 प्रतिशत) का पर्ण छिड़काव भी झुलसा के संक्रमण को रोकता है।
- रोग प्रतिरोधी किस्मों जैसे जी.पी.यू. 45, चिलिका, भैरवी की बुआई करें।

काला धब्बा रोग

यह रोग ज्वार के मुख्य हानिकारक रोगों में से एक है। इस रोग के मुख्य लक्षणों में पत्तों पर छोटे-छोटे लाल, बैंगनी या भूरे धब्बे पड़ जाते हैं। रोग का संक्रमण ज्यादातर पौधे के निचले हिस्से की ओर पुरानी पत्तियों पर पाया जाता है। नए पत्ते आमतौर पर संक्रमण से मुक्त रहते हैं। संक्रमण की तीव्रता जैसे-जैसे बढ़ती है वैसे ही धब्बे भी बड़े हो जाते हैं, जिसके मध्य में काले रंग के बिंदु दिखाई देते हैं।

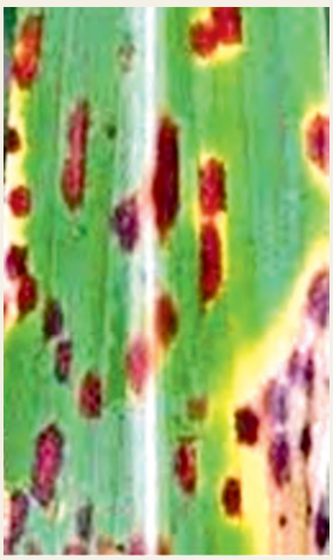

रोग प्रबंधन

- रोग मुक्त और रोग प्रतिरोधी प्रजाति को ही बोना चाहिए।
- नियमित रूप से फसल की अदल-बदल करनी चाहिए।
- पिछली फसलों के अवशेषों को नष्ट करना चाहिए।
- कवकनाशी थीरम या कैप्टॉन 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचार करना चाहिए।
- पौधे पर रोग के लक्षण दिखते ही कार्बेण्डाजिम 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से 15 दिनों के अंतराल पर 3 बार छिड़काव करना चाहिए।

अर्गट रोग

यह रोग बालियों पर पुष्पण के समय

अर्गट रोग

अधिक उपज हेतु रोग प्रबंधन जरूरी

दिखाई देता है। यह रोग सबसे पहले दाने बनने से पूर्व गुलाबी या शहद जैसी छोटी-छोटी बूंदों के रूप में दिखाई देता है। यह हनीड्यू अवस्था कहलाती है। फसल पकने के साथ ही हनीड्यू गायब हो जाता है तथा बाली में दानों के स्थान पर छोटी बैंगनी गहरे भूरे रंग की स्कलेरोशिया बन जाती हैं।

प्रबंधन

- स्कलेरोशिया रहित साफ बीज बुआई के लिए प्रयोग करें।
- 20 प्रतिशत नमक के घोल में बीज को 5 मिनट तक डुबोना चाहिए एवं पानी में तैरते हुए स्कलेरोशिया को निकाल कर नष्ट कर देना चाहिए।
- बीजों को थीरम 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर बोना चाहिए।

कंडुआ रोग

- सिट्टे निकलते समय यदि आसमान में बादल छाये हों, तो 1 कि.ग्रा. मैंकोजेब प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

कंडुआ (स्मट) रोग

यह रोग श्रीअन्न बोये जाने वाले सभी क्षेत्रों में पाया जाता है। यह रोग दाना बनने के समय दिखाई देता है। इस रोग से ग्रस्त सिट्टे में दानों के स्थान पर चमकीले हरे या चॉकलेट रंग के दाने बन जाते हैं। सामान्यतया ये दाने सामान्य से डेढ़ से दो गुना बड़े होते हैं। ये आकार में अण्डाकार से टोपाकार कंड सोरस में दिखाई देते हैं। रोगग्रस्त दानों का हरा रंग धीरे-धीरे गहरे भूरे काले रंग के चूर्ण में बदल जाता है।

प्रबंधन

- बुआई के लिये प्रमाणित बीजों का प्रयोग करना चाहिए।
- रोगग्रस्त बालियो को नष्ट कर देना चाहिए।
- गर्मी के मौसम में मिट्टी में गहरी जुताई करनी चाहिए।
- आईसीएमवी 155, आइसीटीपी 8203, डब्ल्यूसीसी-175, जैसी संकर किस्में बोनी चाहिए।
- थीरम 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजों का उपचार करना चाहिए।
- सिट्टे निकलते समय प्रोपिकोनाजोल या हेक्साकोनाजोल 0.1 प्रतिशत का छिड़काव करें।

भूरा धब्बा रोग

इस रोग का संक्रमण पौधे की सभी अवस्थाओं में होता है। प्रारम्भ में पत्तियों पर छोटे-छोटे हल्के भूरे एवं अंडाकार धब्बे बनते हैं तथा बाद में इनका रंग गहरा भूरा हो जाता है। अनुकूल अवस्था में ये धब्बे आपस में मिलकर पत्तियों को समय से पूर्व सुखा देते हैं। बालियों एवं दानों पर संक्रमण होने पर दानों का उचित विकास नहीं हो पाता, दाने सिकुड़ जाते हैं, जिससे उपज में भारी कमी आती है।

प्रबंधन

- कार्बेण्डाजिम 2 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें।
- खड़ी फसल पर लक्षण दिखायी पड़ने पर मैंकोजेब 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से 10 से 12 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।

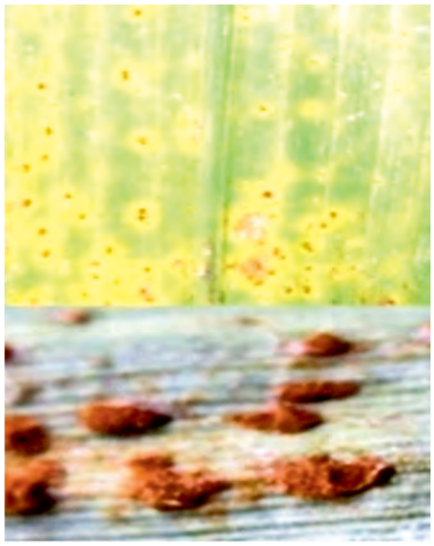

रतुआ रोग का प्रकोप

- रोगरोधी किस्मों की बुआई हेतु चयन करें।

रतुआ (रस्ट) रोग

रतुआ रोग से प्रभावित पौधों की निचली पत्तियों पर लाल-भूरे रंग के फुंसी दाने उभर आते हैं। फसल के पकने के साथ ही यह फुंसी गहरे भूरे रंग की होने लगती हैं। फुंसी पत्तियों की दोनों सतहों पर बनती है, परन्तु साधारणत: पत्तियों की ऊपरी सतह पर ही अधिक देखी जाती हैं। रोग की उग्र अवस्था में फुंसी आपस में मिलकर बड़े आकार में बदल जाती हैं। ये फुंसियां पत्तियों के अलावा उनके ऊपर लगे आवरण पर भी उभर आती हैं।

प्रबंधन

- खेत को खरपतवारमुक्त रखना चाहिए।
- रोग के लक्षण दिखाई देते ही फफूंदनाशक प्रोपिकोनाजोल 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। यदि आवश्यक हो, तो 15 दिनों मे दोबारा छिड़काव करें।

फसल रोगों को दुनियाभर में खाद्य सुरक्षा के लिए प्रमुख चुनौतियों में से एक माना गया है। प्रत्येक वर्ष फसलों में रोगों के कारण खाद्य उत्पादन की बहुत बड़ी मात्रा का गुणात्मक और मात्रात्मक ह्रास हो जाता है। वर्तमान बदलती जलवायु परिस्थितियां आहार उपलब्धता के लक्ष्यों को विफल कर रही हैं, जिससे वैश्विक खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा पैदा हो रहा है। इस संकट से निपटने के लिए समेकित नियंत्रण उपायों के विकास की आवश्यकता होती है। अत: उपरोक्त समेकित रोग प्रबंधन को अपनाकर किसान खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के साथ-साथ अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं। ■

फसल उत्पादन में सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका

रूही, विजय कुमार, रोहतास कुमार और **हरदीप श्योराण**

"फसल उत्पादन में सूक्ष्म पोषक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका है। सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे-आयरन, जिंक, मैंग्नीज, बोरॉन, मॉलिब्डेनम आदि पौधों के विकास के लिए आवश्यक होते हैं। यद्यपि इनकी आवश्यकता कम मात्रा में होती है। ये पौधों के विभिन्न जैव रासायनिक प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जैसे कि क्लोरोफिल निर्माण, एंजाइम क्रियाएं, शर्करा का स्थानांतरण और नाइट्रोजन स्थिरीकरण। इनकी कमी से फसल की वृद्धि, उपज और गुणवत्ता प्रभावित होती है, जिससे किसानों को आर्थिक नुकसान हो सकता है। आधुनिक कृषि प्रथाओं में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी बढ़ी है। इसका मुख्य कारण गहन खेती, रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग और मृदा की गुणवत्ता में कमी है। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन लागत बढ़ती है और फसल गुणवत्ता कम होती है, जिससे किसानों की आय प्रभावित होती है। कृषि प्रबंधन में सूक्ष्म पोषक तत्वों के सही उपयोग और संतुलन को सुनिश्चित करने के लिए मृदा और पौधों के नमूनों का परीक्षण, स्थान-विशिष्ट प्रबंधन और फसल की नियमित निगरानी आवश्यक है। इससे न केवल उपज बढ़ती है, बल्कि उत्पादन लागत को नियंत्रित कर किसानों को अधिक लाभ मिलता है।"

पौधों की वृद्धि और विकास के लिए सूक्ष्म पोषक तत्व या ट्रेस तत्व आवश्यक होते हैं। इसकी जरूरत पौधों को बहुत कम मात्रा में पड़ती है। इनमें आयरन (Fe), कॉपर (Cu), क्लोरीन (Cl), मैंग्नीज (Mn), बोरॉन (B), (Ni), जिंक (Zn) और मॉलिब्डेनम (Mo) शामिल हैं।

पौधों द्वारा सूक्ष्म पोषक तत्वों का संचय का सामान्यतः क्रम Mn>Fe>Zn>B>Cu>Mo है। यह क्रम पौधों की प्रजातियों और वृद्धि की स्थितियों (जैसे धान) के अनुसार परिवर्तन हो सकता है। यह आमतौर पर साइटोक्रोम, क्लोरोफिल और प्रोटीन (जैसे एंजाइम) के साथ मिलकर पाया जाता है।

सूक्ष्म पोषक तत्व फसल के लिए बहुत कम मात्रा में आवश्यक हो सकते हैं। किंतु फसल के विकास पर इनका गहरा प्रभाव पड़ता है। जब भी एक या एक से अधिक सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होती है, तब पैदावार कम होगी और फसल उत्पादों की गुणवत्ता भी खराब होगी। पिछले कुछ वर्षों से

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी फसलों में काफी बढ़ गई है। इसके मुख्य कारण हैं–गहन फसल लगना, कटाव से ऊपरी मृदा का नुकसान, लीचिंग के माध्यम से सूक्ष्म पोषक तत्वों की हानि, अम्लीय मृदा का चूना लगाना, रासायनिक उर्वरकों की तुलना में गोबर की खाद के अनुपात में कमी, रासायनिक उर्वरकों का अधिक प्रयोग और फसल उत्पादन के लिए सीमांत भूमि का उपयोग।

सूक्ष्म पोषक तत्वों के प्रकार और भूमिका

आयरन

पादप कोशिकाओं में क्लोरोफिल के निर्माण के लिए आयरन (Fe) की आवश्यकता होती है। यह श्वसन, प्रकाश संश्लेषण और सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण जैसी जैव रासायनिक प्रक्रियाओं के लिए एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है। एरोबिक की स्थिति में, आयरन ऑक्साइड और हाइड्रॉक्साइड के घटक के रूप में काफी हद तक अघुलनशील होता है। इसलिए, मृदा के घोल में आयरन की सांद्रता बहुत कम होती है। आयरन की कमी से नयी पत्तियों की अंत:शिरा में क्लोरोसिस हो जाता है। गंभीर मामलों को छोड़कर सिर्फ शिराएं हरी रहती हैं। आयरन की कमी को मृदा में $FeSO_4$ के प्रयोग से ठीक किया जा सकता है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों के प्रकार

कॉपर

यह पोषक तत्व पौधों में कई एंजाइम का एक उत्प्रेरक है। ऑक्सीडेटिव प्रोटीन और एंजाइमों द्वारा इलेक्ट्रॉन संचार और ऊर्जा भंडारण में कार्य करता है। कॉपर की कमी प्रोटीन संश्लेषण में बाधा डालती है। इसकी कमी से पत्तियां हरिमाहीन या गहरे नीले-हरे रंग की हो सकती हैं और किनारे मुड़ जाते हैं। वृक्षों की छाल अक्सर खुरदरी और फफोलेदार होती है और छाल में दरारों से गोंद निकल सकता है।

क्लोरीन

पौधों में इसकी सामान्य सांद्रता एक मैक्रोन्यूट्रिएंट की तरह होती है और फिर भी विकास के लिए क्लोरीन की आवश्यकता एक सूक्ष्म पोषक तत्व की तरह होती है। पौधों को क्लोरीन की आपूर्ति आमतौर पर विभिन्न स्रोतों (मृदा के भंडार, वर्षा, उर्वरक और वायु प्रदूषण) से की जाती है, इसलिए कमी की तुलना में टॉक्सिसिटी स्तर के बारे में अधिक चिंता होती है।

बोरॉन

यह तत्व शर्करा स्थानांतरण के लिए आवश्यक है और परागकणों के अंकुरण में मदद करता है। मृदा के पी-एच मान में वृद्धि के साथ बोरॉन की उपलब्धता कम हो जाती है। टहनियों में बोरॉन की कमी के लक्षण सबसे पहले अंतिम कलियों या नई पत्तियों पर दिखाई देते हैं, जो बदरंग हो जाते हैं और मर सकते हैं।

जिंक

जिंक या तो एंजाइमों के धातु घटक के रूप में या बड़ी संख्या में एंजाइमों के कार्यात्मक, संरचनात्मक या नियामक सहकारक के रूप में कार्य करता है। जिंक आरएनए पॉलीमरेज का एक आवश्यक घटक है। यदि जिंक हटा दिया जाता है, तो एंजाइम निष्क्रिय हो जाता है। जिंक राइबोसोम का भी एक घटक है और उनकी संरचनात्मक अखंडता के लिए आवश्यक है। फॉस्फोरस उर्वरकों के बड़े अनुप्रयोग से जिंक की कमी हो सकती है और पौधों में जिंक की आवश्यकता बढ़ सकती है। जिंक की कमी से तने की लंबाई में कमी, इंटरनोड्स का छोटा होना और अंतिम पत्तियों का रोसेट होता है। जिंक की कमी को मृदा में $ZnSO_4$ जैसे लवणों के प्रयोग से काफी आसानी से ठीक किया जा सकता है।

निकल

बीन और लोबिया जैसी फलीदार फसलों को अन्य फसलों की तुलना में अधिक निकल की आवश्यकता होती है। निकल नोड्यूलेशन और नाइट्रोजन निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार निकल की कमी के कारण नोड्यूलेशन में देरी होती है और नाइट्रोजन निर्धारण की दक्षता कम हो जाती है। निकल सल्फेट ($NiSO_4$) जैसे घुलनशील लवण, पौधों में

सूक्ष्म पोषक तत्वों का महत्व

गुणवत्ता एवं उपज में वृद्धि

अधिकांश सूक्ष्म पोषक तत्व पौधों की विभिन्न मेटाबॉलिक गतिविधियों जैसे प्रोटीन मेटाबॉलिज्म, कार्बोहाइड्रेट मेटाबॉलिज्म, प्रकाश संश्लेषण दर आदि में भाग लेने वाले विभिन्न एंजाइमों में सहकारक के रूप में कार्य करते हैं। इसलिए प्रोटीन सामग्री, टीएसएस और अन्य गुणवत्ता मापदंडों में वृद्धि होती है।

फलीदार फसलें

फलीदार फसलों में, ये N_2 स्थिरीकरण को प्रभावित करते हैं। Fe और Mo जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व नाइट्रोजन एंजाइमों का महत्वपूर्ण घटक हिमोग्लोबिन के निर्माण में मदद करते हैं।

प्रमुख आर्थिक प्रभाव

कृषि कार्य में सूक्ष्म पोषक तत्वों की सांद्रता का प्रमुख प्रभाव मैक्रो पोषक तत्वों के उर्वरक उपयोग की बढ़ी हुई दक्षता के माध्यम से होता है।

मैंग्नीज

मैंग्नीज का अवशोषण मुख्य रूप से Mn^{2+} के रूप में होता है। मैंग्नीज विकास प्रक्रियाओं में एंजाइमों के लिए एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है। यह क्लोरोफिल निर्माण में आयरन की सहायता करता है। उच्च मैंग्नीज सांद्रता आयरन की कमी को दर्शाती है। मैंग्नीज की कमी का लक्षण नई पत्तियों का इंटरवेनल क्लोरोसिस है। शिराओं के बगल में गहरे हरे रंग के साथ हल्के हरे रंग का क्रमिक विकास होता है। इसमें आयरन की कमी की तरह शिराओं और अंत:शिरा क्षेत्रों के बीच कोई अंतर स्पष्ट नहीं होता है। मैंग्नीज की कमी को मृदा में $MnSO_4$ के प्रयोग से ठीक किया जा सकता है।

निकल की कमी को रोकने या ठीक करने के लिए उपयुक्त उर्वरक हैं।

मॉलिब्डेनम

पौधे के पोषक तत्व के रूप में मॉलिब्डेनम एंजाइमों के धातु घटक के रूप में होने वाले संयोजकता परिवर्तनों से संबंधित हैं। केवल कुछ ही एंजाइमों में पौधों में मॉलिब्डेनम पाया गया है। उच्च पौधों में दो मॉलिब्डेनम युक्त एंजाइम-नाइट्रोजनेज और नाइट्रेट रिडक्टेज, फसल उत्पादन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। मॉलिब्डेनम की कमी से नाइट्रेट रिडक्टेस गतिविधि कम हो जाती है, जो पौधे की प्रोटीन को संश्लेषित करने की क्षमता को बाधित करती है।

सूक्ष्म पोषक की उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक

मृदा का पी-एच

मृदा का पी-एच मान घुलनशीलता, मृदा के घोल में सांद्रता, आयनिक रूप और मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की गतिशीलता और परिणामस्वरूप पौधों द्वारा इन तत्वों के अधिग्रहण को प्रभावित करता है। मृदा का पी-एच बढ़ जाने से B, Cu, Fe, Mn और Zn की उपलब्धता आमतौर पर कम हो जाती है और Mo की उपलब्धता बढ़ जाती है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों के उर्वरक स्रोत

कार्बनिक पदार्थ

मृदा में कार्बनिक पदार्थ मिलाने से मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों के पानी में घुलनशील और विनिमय रूपों में वृद्धि होती है, जो सूक्ष्म पोषक तत्वों के अवशोषण को और बढ़ाता है।

तापमान

ज्यादातर सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता कम तापमान पर कम हो जाती है, तब जड़ गतिविधि और माइक्रोबियल गतिविधि कम हो जाती है। इससे पोषक तत्वों के विघटन और प्रसार की दर भी कम हो जाती है।

नमी

मृदा की नमी प्रभावित करती है कि मृदा में पोषक तत्व कितनी अच्छी तरह घुलते हैं। यह निर्धारित करता है कि पौधों को अवशोषित करने के लिए कितना जल उपलब्ध है। गीली मृदा में खनिज अधिक आसानी से घुल जाते हैं। इससे मृदा के घोल में पोषक तत्व निकल जाते हैं। मृदा की नमी मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों की गतिविधियों को प्रभावित करती है, जो कार्बनिक पदार्थों को तोड़कर उन्हें पोषक तत्वों में परिवर्तित कर देते हैं, जिनका उपयोग पौधे कर सकते हैं।

मृदा की बनावट

मृदा की बनावट सूक्ष्म पोषक तत्वों की अवधारण क्षमता और गतिशीलता को प्रभावित करती है। कम कटियन एक्सचेंज कैपेसिटी (सीईसी) वाली रेतीली मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों के निक्षालन की आशंका अधिक होती है। जबकि उच्च सीईसी वाली चिकनी मृदा सूक्ष्म पोषक तत्वों को बेहतर बनाए रखती है, लेकिन उन्हें अनुपलब्ध रूपों में भी ठीक कर सकती है।

फसल उत्पादन में सूक्ष्म पोषक तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका है। सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे आयरन, जिंक, मैंग्नीज, बोरॉन, मॉलिब्डेनम आदि पौधों के विकास के लिए आवश्यक होते हैं। यद्यपि इनकी आवश्यकता कम मात्रा में होती है। ये पौधों की विभिन्न जैव रासायनिक प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जैसे कि क्लोरोफिल निर्माण, एंजाइम क्रियाएं, शर्करा का स्थानांतरण और नाइट्रोजन स्थिरीकरण। इनकी कमी से फसल की वृद्धि, उपज और गुणवत्ता प्रभावित होती है, जिससे किसानों को आर्थिक नुकसान हो सकता है।

अंतत: सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग कृषि की उत्पादकता, लाभ और स्थिरता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ■

सूक्ष्म पोषक तत्व प्रबंधन

- **मृदा और पौधों के नमूने:** संपूर्ण तुलनात्मक विश्लेषण के लिए उसी क्षेत्र के प्रभावित और गैर-प्रभावित क्षेत्रों से मृदा और पौधों के ऊतकों के नमूने लें। यह विश्लेषण सेवा अधिकांश मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं में उपलब्ध है।
- **अच्छे फील्ड रिकॉर्ड रखें:** जानें कि किन क्षेत्रों में पहले सूक्ष्म पोषक तत्वों की समस्या थी; सालाना मृदा परीक्षण और लक्षणों के लिए प्रत्येक फसल की निगरानी करें। आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा फसल के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है।
- **भू-संदर्भ सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी वाले क्षेत्र:** स्थान-विशिष्ट प्रबंधन को आसान बनाने के लिए किसी क्षेत्र के भीतर भू-संदर्भ सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी वाले क्षेत्रों का उपयोग करें। मैक्रोन्यूट्रिएंट्स की तुलना में माइक्रोन्यूट्रिएंट्स महंगे हैं, इसलिए स्थान-विशिष्ट प्रबंधन आर्थिक रूप से सही है।

शरबती गेहूं का भरपूर उत्पादन

निर्झरणी नंदेहा[1] और **आयुषी त्रिवेदी**[2]

"भारत में पारंपरिक खेती की समृद्ध विरासत होने के बावजूद आधुनिक कृषि में रासायनिक उर्वरकों पर अत्यधिक निर्भरता ने मृदा की गुणवत्ता और पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव डाला है। ऐसे में जैविक खेती एक वैकल्पिक नहीं, बल्कि आवश्यक विकल्प बनकर उभरी है। यह न केवल फसलों की गुणवत्ता बढ़ाती है, बल्कि दीर्घकालिक मृदा स्वास्थ्य और किसानों की आय को भी सुनिश्चित करती है। इस लेख में जैविक खेती के अंतर्गत किए गए दो-वर्षीय अनुसंधान का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें मध्य प्रदेश के पठारी क्षेत्र में उगाई गई शरबती गेहूं की किस्मों पर जैविक पोषण तकनीकों के प्रभावों का अध्ययन किया गया। शोध में मुख्य रूप से बीडी-500, बीडी-501, पंचगव्य और वर्मीकम्पोस्ट जैसे जैविक संसाधनों का प्रयोग किया गया। परिणामों से स्पष्ट हुआ कि बीडी-500, बीडी-501+पंचगव्य+वर्मीकम्पोस्ट के संयुक्त उपयोग से गेहूं की उपज, गुणवत्ता और आर्थिक लाभ में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। विशेष रूप से जेडब्ल्यू-3020 किस्म ने जैविक तकनीकों के साथ श्रेष्ठ प्रदर्शन किया, जबकि सी-306 और एचडब्ल्यू-2004 ने भी सकारात्मक परिणाम दिए। इन जैविक तकनीकों से न केवल पौधों की वृद्धि, पत्तियों का क्षेत्रफल, सूखा वजन और क्लोरोफिल की मात्रा में सुधार हुआ, बल्कि मृदा में जैविक कार्बन और सूक्ष्मजीव जनसंख्या भी बढ़ी। इससे मृदा की दीर्घकालिक उर्वरता सुनिश्चित होती है। आर्थिक दृष्टि से भी जैविक उपचारों ने उच्च लाभ-लागत अनुपात प्रदान किया। इससे यह निष्कर्ष है कि जैविक खेती न केवल पर्यावरण के लिए अनुकूल है, बल्कि किसानों के लिए भी लाभदायक है। यह अध्ययन इस बात को प्रमाणित करता है कि परंपरागत जैविक विधियों और वैज्ञानिक अनुसंधान के संयोजन से सतत कृषि प्रणाली का निर्माण संभव है।"

[1]सहायक प्राध्यापक, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर; [2]सहायक प्राध्यापक, महात्मा गांधी उद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सांकरा, पाटन, दुर्ग

भारत में खेती सिर्फ एक आजीविका नहीं, बल्कि जीवनशैली और संस्कृति का हिस्सा है। हरित क्रांति के बाद रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों ने भले ही कृषि उत्पादन में क्रांतिकारी वृद्धि की हो, परंतु इसके दीर्घकालिक दुष्परिणाम अब साफ दिखाई देने लगे हैं जैसे कि मृदा की उर्वराशक्ति में कमी, पर्यावरण प्रदूषण, और उत्पादों की गुणवत्ता में कमी। ऐसे समय में जैविक खेती एक सशक्त और टिकाऊ विकल्प बनकर उभरी है, जो न केवल पर्यावरण के अनुकूल है, बल्कि किसानों को आर्थिक रूप से भी सशक्त बना सकती है। जैविक खेती में प्रयुक्त बायोडायनामिक तकनीकें, पंचगव्य और वर्मीकम्पोस्ट जैसे प्राकृतिक संसाधन मृदा की जीवंतता और पौधों की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं।

इसके लिए एक प्रयोग किया गया और इस वैज्ञानिक अध्ययन में यह देखा गया कि मध्यप्रदेश के पठारी क्षेत्र में जैविक तरीकों से उगाए गए शरबती गेहूं की उपज, गुणवत्ता और लाभ में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। विशेष रूप से बीडी-500, बीडी-501, पंचगव्य और वर्मीकम्पोस्ट के संयुक्त प्रयोग से न केवल उत्पादन में इजाफा हुआ, बल्कि मृदा की जैविक संरचना और लाभ-लागत अनुपात में भी सुधार देखने को मिला।

यह लेख इसी शोध पर आधारित है और दर्शाता है कि कैसे पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक विज्ञान के संयोजन से खेती को अधिक टिकाऊ, लाभकारी और पर्यावरण हितैषी बनाया जा सकता है। शोध में कुल 27 उपचारों का मूल्यांकन किया गया, जिसमें चार शरबती गेहूं की किस्में (जेडब्ल्यू-3020, सी-306 सुजाता, एचडब्ल्यू-2004) और विभिन्न जैविक मिश्रणों का प्रयोग किया गया।

प्रमुख जैविक उपचार

- **बीडी-500:** गोबर से बनी खाद, जो मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ाती है।
- **बीडी-501:** क्वार्ट्ज (सिलिका) आधारित तैयारी, जो पौधों की प्रकाश प्रतिक्रिया और रोग प्रतिरोध क्षमता बढ़ाती है।
- **पंचगव्य:** गौमूत्र, गोबर, दूध, दही और घी का मिश्रण, जिसमें विकास हार्मोन और उपयोगी सूक्ष्मजीव होते हैं।
- **वर्मीकम्पोस्ट:** केंचुआ खाद, जो पोषक तत्वों और सूक्ष्मजीवों से भरपूर होती है।

पंचगव्य

शोध में पंचगव्य को पौध पोषण के एक जैविक स्रोत के रूप में प्रयोग किया गया, जो गाय से प्राप्त पांच उत्पादों का मिश्रण है: गौमूत्र, गोबर, दूध, दही और घी। यह एक किण्वित मिश्रण है, जो पौधों की वृद्धि, रोग प्रतिरोधक क्षमता और मृदा की जैविक गुणवत्ता को सुधारने में सक्षम होता है।

पंचगव्य बनाने की विधि

उपयोग का स्वरूप

शोध में पंचगव्य का प्रयोग 3: फोलियर स्प्रे के रूप में किया गया, जो निम्न विकास अवस्थाओं पर छिड़का गया:

- क्राउन रूट इनिशिएशन
- कल्ले निकलना
- पादप का कड़ा होना/प्रारोह विकास

इसे फसल के ऊपर हाथ से चलने वाले छिड़काव यंत्र की सहायता से उपयोग किया गया, जिसमें बड़े छिद्र वाले नोजल का प्रयोग शामिल है।

तैयारी की विधि

पहला चरण (दिन 1)

- एक साफ और ढक्कन वाला प्लास्टिक ड्रम लें (50-100 लीटर क्षमता)।
- सबसे पहले घी और गोबर को अच्छी तरह मिलाकर 3 दिनों तक प्रतिदिन सुबह-शाम लकड़ी की छड़ी से 20 मिनट तक घड़ी की दिशा में और फिर विपरीत दिशा में चलाएं।

दूसरा चरण (दिन 4)

- अब मिश्रण में गौमूत्र, दूध, दही, गन्ने का रस, नारियल पानी और कटे हुए केले मिलाएं।
- इस पूरे मिश्रण को ढककर छायादार स्थान में रखें और प्रतिदिन दो बार (सुबह-शाम) लकड़ी की छड़ी से हिलाते रहें।

तीसरा चरण

- यह मिश्रण 7 से 10 दिनों में पूरी तरह तैयार हो जाता है।
- तैयार होने पर इसमें मीठी गंध आती है और यह हल्का झागदार होता है।

सारणी 1: उपयोग की विधियां

प्रयोग क्षेत्र	उपयोग विधि	सिफारिश
फसल पर स्प्रे	3 प्रतिशत घोल (3 लीटर पंचगव्य+100 लीटर पानी)	हर 15 दिनों में एक बार छिड़काव करें
बीज उपचार	30 मिनट तक बीजों को पंचगव्य में भिगोना	रोपाई से पहले
मृदा उपचार	10-20 लीटर पंचगव्य प्रति एकड़ खेत में डालें	रोपाई या बुआई से पहले
सिंचाई के साथ उपयोग	5 लीटर पंचगव्य प्रति एकड़ सिंचाई जल में मिलाएं	हर तीसरी सिंचाई में उपयोग करें

- **उत्तम वृद्धि और विकासः** बीडी-500+बीडी-501+पंचगव्य+वर्मीकम्पोस्ट से उपचारित पौधों में सबसे अधिक पौध ऊंचाई, टिलर संख्या, सूखा वजन, पत्ती क्षेत्र सूचकांक और क्लोरोफिल सामग्री दर्ज की गई।
- **उत्कृष्ट उपजः** उपरोक्त उपचार से 2462.17 कि.ग्रा./हैक्टर तक अनाज की उपज प्राप्त हुई, जो अन्य उपचारों और नियंत्रण समूह की तुलना में 22-25 प्रतिशत अधिक थी।
- **मृदा की गुणवत्ता में सुधारः** इस जैविक संयोजन से मृदा में जैविक कार्बन और सूक्ष्मजीव की संख्या में वृद्धि हुई, जिससे दीर्घकालिक उर्वरता बेहतर होती है।
- **आर्थिक लाभः** शोध में यह भी पाया गया कि जैविक उपचारों से शुद्ध लाभ और लाभ-लागत अनुपात अधिक रहा अर्थात किसानों को प्रति रुपये निवेश पर अधिक लाभ प्राप्त हुआ।

सर्वश्रेष्ठ किस्मः जेडब्ल्यू-3020 किस्म ने जैविक परिस्थितियों में सबसे उत्कृष्ट प्रदर्शन किया, न केवल विकास के मापदंडों में, बल्कि उपज और गुणवत्ता (जैसे प्रोटीन, ग्लूटेन) में भी। इसके साथ ही सी-306 और एचडब्ल्यू-2004 ने भी अच्छे परिणाम दिए।

प्रायोगिक क्षेत्र का सामान्य दृश्य

सारणी 2: शरबती गेहूं में जैविक तकनीकों के प्रभाव के परिणाम

क्र. सं.	जैविक उपचार संयोजन	प्रमुख परिणाम	उपज (कि.ग्रा./ हैक्टर)	लाभ-लागत अनुपात	श्रेष्ठ किस्म
1.	बीडी-500+बीडी-501+पंचगव्य+ वर्मीकम्पोस्ट	सर्वाधिक वृद्धि, हरा-भरा विकास, अधिक प्रोटीन व ग्लूटेन	2462.17	उच्चतम	जेडब्ल्यू-3020
2.	पंचगव्य+ वर्मीकम्पोस्ट	अच्छी उपज व मृदा की गुणवत्ता में सुधार	2100-2300 (अनुमानित)	उच्च	जेडब्ल्यू-30/ सी-306
3.	बीडी-500+बीडी-501 +वर्मीकम्पोस्ट	संतुलित वृद्धि व उपज	2000-2150	मध्यम	एचडब्ल्यू-2004
4.	केवल वर्मीकम्पोस्ट	तुलनात्मक रूप से कम उपज, फिर भी रासायनिक नियंत्रण से बेहतर	1800	कम	सी-306
5.	बिना कोई जैविक उपचार	पौधों में पीलापन+सबसे कम उपज एवं सूक्ष्मजीव संख्या	1300-1400	न्यूनतम	कोई नहीं

किसानों के लिए सुझाव

जैविक विधि से फसलोत्पादन करने हेतु विभिन्न सामग्रियों को अपनाना आवश्यक है।

जैविक विधि से तैयार फसल

- वर्मीकम्पोस्ट 4 टन/हैक्टर
- बीडी-500 (75 ग्राम/हैक्टर)+बीडी-501 (2.5 ग्राम/हैक्टर)
- 3 प्रतिशत पंचगव्य का फोलियर स्प्रे (सीआरआई, टिलरिंग और जॉइंटिंग स्टेज पर)
- जेडब्ल्यू-3020 किस्म को प्राथमिकता दें।

यह शोध स्पष्ट करता है कि जैविक तकनीकें न केवल कृषि उत्पादन को बढ़ाती हैं, बल्कि स्वस्थ मृदा, स्वस्थ पौधे और स्वस्थ मानवता की दिशा में एक आवश्यक परिवर्तन लाती हैं। जैविक खेती अब केवल एक विकल्प नहीं, बल्कि समाज और पर्यावरण की आवश्यकता बन चुकी है।

सितंबर के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, अंजली पटेल, प्रवीण कुमार उपाध्याय, एस.एस. राठौर और **आदित्य सिंह**

"सितंबर माह जिसे भादो भी कहते हैं, में खरीफ फसलें जैसे–धान, दलहनी, तिलहनी, नकदी एवं चारा फसलें खेतों में खड़ी होती हैं तथा विकसित होना प्रारंभ हो जाती हैं। यह तोरिया फसल की बुआई का समय होता है। इसके साथ ही इस समय फसलों में रोगों एवं कीटों का प्रकोप भी बढ़ जाता है। यह मौसम सब्जियां, बागवानी एवं पुष्प उत्पादन के लिए काफी महत्वपूर्ण है। कुछ खेतों में टमाटर, फूलगोभी, पत्तागोभी, बैंगन, मिर्ची, मूली, गाजर हैं तथा कुछ में लगाने की तैयारी है। इस माह कुछ अन्य सब्जियां भी लगा सकते हैं तथा भिण्डी और बरबटी आदि की तैयार फसलों की तुड़ाई करते हैं। इसके साथ ही आम के लगाये गये नये पौधों की सुरक्षा एवं अमरूद के बगीचों की सिंचाई करते हैं। शोध परिणामों से ज्ञात हुआ है कि अधिक उपज देने वाली उन्नत प्रजातियों की उत्तम गुणवत्ता का स्वस्थ बीज, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन, समुचित जल प्रबंधन, खरपतवार प्रबंधन एवं कीट तथा रोग प्रबंधन, उपयुक्त समय पर फसल की कटाई और मड़ाई तथा उपयुक्त भंडारण इत्यादि अपनाकर किसान लागत कम करके उत्पादन में वृद्धि कर सकते हैं। प्रस्तुत लेख में इन सभी बातों पर विस्तृत जानकारी दी गई है। आशा है इस जानकारी से किसानों को भरपूर लाभ मिलेगा।"

देश की निरन्तर बढ़ती जनसंख्या से खाद्य उत्पादों की मांग बढ़ी है। इसे पूरा करने के लिये सभी कृषि संसाधनों का दक्षपूर्ण उपयोग, आधुनिक सस्य विधियों के साथ अल्पावधि एवं अधिक उपज देने वाली उन्नत प्रजातियों का चयन करना आवश्यक है। इसके साथ ही समय पर समन्वित रोग एवं कीट प्रबंधन, जलवायु परिवर्तन से फसल बचाव का ज्ञान आदि अपनाने के अलावा उत्पाद को बाजार में उचित मूल्य पर बेचने की नितान्त आवश्यकता है। जलवायु परिवर्तन, दैनिक तापमान बढ़ने एवं घटने, आने वाले दिनों में वर्षा आदि की जानकारी के आधार पर कृषि सलाह पूसा संस्थान के वेबपेज पर उपलब्ध है। किसान इसकी जानकारी से फसलें उगाकर अधिक लाभ कमा सकते हैं।

सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

धान

- **जल प्रबंधन:** बालियां तथा फूल निकलने के समय खेत में पर्याप्त नमी बनाये रखने के लिए आवश्यकतानुसार सिंचाई करें।
- **पोषक तत्व प्रबंधन:** धान में नाइट्रोजन की दूसरी एवं अन्तिम मात्रा टॉप ड्रेसिंग के रूप में 50–55 दिनों के बाद अर्थात् बाली बनने की प्रारंभिक अवस्था में दें। इसके साथ ही अधिक उपज देने वाली उन्नत प्रजातियों के लिए 30 कि.ग्रा. तथा सुगंधित प्रजातियों के लिए 15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। ध्यान रहे कि टॉप ड्रेसिंग करते समय खेत में 2–3 सें.मी. से अधिक पानी नहीं होना चाहिए।

रोग प्रबंधन

धान का झोंका (ब्लास्ट) रोग

- **लक्षण:** यह रोग फफूंद से फैलता है। इस रोग द्वारा पौधे के सभी भाग प्रभावित होते हैं। इस रोग का प्रकोप

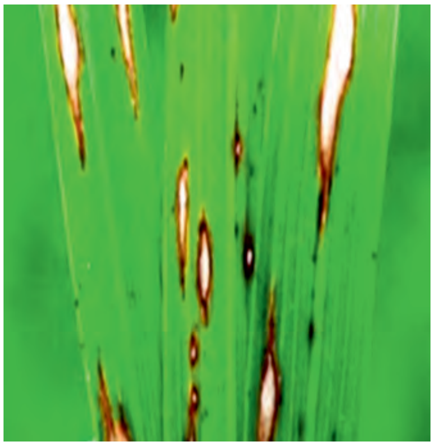

धान का झोंका रोग

जुलाई-सितंबर माह में एवं असिंचित धान में बहुत अधिक होता है। इससे पत्तियां झुलसकर सूख जाती हैं। गाठों पर भी भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। इससे समुचित पौधे को नुकसान होता है। गांठ के चारों ओर फफूंद के फैलने से पौधे टूट जाते हैं। बालियों के निचले डंठल पर धूसर बादामी रंग के क्षतस्थल बनते हैं।

- **नियंत्रण:** इस रोग के नियंत्रण के लिए बुआई से पूर्व बीज को ट्राइसाइक्लेजोल 2.0 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। दौजियां निकलने और पुष्पण की अवस्था में जरूरत पड़ने पर कार्बेण्डाजिम (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव करें या खड़ी फसल में 250 ग्राम कार्बेण्डाजिम एवं 1.25 कि.ग्रा. इंडोफिल एम-45 को 1000 लीटर पानी में घोलकर/हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए। झोंका अवरोधी प्रजातियां जैसे वी.एल. धान-206, मझेरा-7 (चेतकी धान), वी.एल. धान-163, वी.एल. धान-221 (जेठी धान), वी.एल. धान-61 आदि का उपयोग सिंचित क्षेत्रों में मध्यकालीन बुआई हेतु करें। इसके अतिरिक्त, रोग के लक्षण दिखायी देने पर 10-12 दिनों के अंतराल पर या बाली निकलते समय दो बार आवश्यकतानुसार कार्बेण्डाजिम 50 प्रतिशत घुलनशील पाउडर की 15-20 ग्राम मात्रा को लगभग 15 लीटर पानी में घोल बनाकर सिंचाई की नालियों में प्रयोग करें।

गर्दन तोड़ रोग

- **नियंत्रण:** बीज उपचार के लिए बाविस्टीन 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। इस रोग के दिखाई देते ही कार्बेण्डाजिम 1 ग्राम/ लीटर या हीमोसान 1 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें एवं दूसरा छिड़काव 7-10 दिनों के बाद करें।

गर्दन तोड़ रोग का प्रकोप

भूरी चित्ती रोग

- **लक्षण:** इस रोग के लक्षण मुख्यत: पत्तियों पर तथा पर्णच्छदों पर छोटे-छोटे भूरे रंग के धब्बे के रूप में दिखायी देते हैं। ज्यादा संक्रमण होने पर ये धब्बे आपस में मिलकर पत्तियों को सूखा देते हैं और बालियां पूर्ण रूप से बाहर नहीं निकलती हैं।
- **नियंत्रण:** इस रोग की रोकथाम हेतु संतुलित मात्रा में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश का प्रयोग करें। बीज को थीरम 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. की दर से उपचारित करके बुआई करें या जिंक मैंग्नीज कार्बोनेट 75 प्रतिशत के 2 कि.ग्रा. को 800 लीटर पानी में घोलकर/हैक्टर में छिड़काव करें।

फॉल्स स्मट

- **लक्षण:** फसल पकते समय नसवार जैसे दाने धान के दानों के साथ लग जाते हैं। इससे फसल की उपज पर बुरा प्रभाव पड़ता है। रोगग्रस्त दाने आकार में सामान्य दानों से दोगुना या 5-6 गुना होते हैं।
- **नियंत्रण:** रोग को कम करने के लिए 500 ग्राम मैंकोजेब या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड को 200 लीटर पानी में प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करना चाहिए।

पत्ती का जीवाणु झुलसा रोग

- **लक्षण:** यह रोग जीवाणु द्वारा होता है। पौधों की छोटी अवस्था से लेकर परिपक्व अवस्था तक यह रोग कभी भी हो सकता है। इस रोग में पत्तियों के किनारे ऊपरी भाग से शुरू होकर मध्य भाग तक सूखने लगते हैं। सूखे पीले पत्तों के साथ-साथ राख के रंग के चकत्ते भी दिखाई देते हैं। संक्रमण की उग्र अवस्था में पूरी पत्ती सूख जाती है।
- **नियंत्रण:** रोकथाम के लिए 2.5 ग्राम स्ट्रैपटोसाइक्लिन+25 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड प्रति 10 लीटर पानी के घोल में बीज को 12 घंटे तक डुबोएं। नाइट्रोजन उर्वरक का प्रयोग कम कर दें तथा जिस खेत में रोग लगा हो उसका पानी दूसरे खेत में न जाने दें। इससे रोग फैलने की आशंका होती है। इसके साथ ही खेत से समुचित जल निकास की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त 74 ग्राम एग्रीमाइसीन-100 और 500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड को 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से 3-4 बार छिड़काव करें। पहला छिड़काव रोग प्रकट होने पर तथा आवश्यकतानुसार 10 दिनों के अंतराल पर करें। रोग सहिष्णु किस्में जैसे पन्त धान-4, पन्त धान-12, रत्ना, गोविन्द एवं मनोहर आदि का प्रयोग करना चाहिए।

कीट नियंत्रण

पत्ती लपेटक कीट

- **लक्षण:** इस कीट की सुंडी पौधों की कोमल पत्तियों के सिर की तरफ से लपेटकर सुरंग-सी बना लेती है और

पत्ती लपेटक कीट

उसे अंदर से खाती रहती है। फलस्वरूप पौधों की पत्तियां का रंग उड़ जाता है और पत्तियां सिरे की तरफ से सूख जाती हैं। अगस्त से लेकर अक्टूबर तक इसके द्वारा नुकसान होता है।

- **नियंत्रण:** कीटों को प्रकाश प्रपंच (लाइट ट्रैप) पर इकट्ठा करके नष्ट कर सकते हैं। अंड परभक्षी *ट्राइकोग्रामा काइलोनिस* 1,00,000-1,50,000 प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। कार्टेप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी, 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर या क्विनालफॉस 25 ई.सी. 2 मि.ली. प्रति लीटर या कार्टेप हाइड्रोक्लोराइड 50 एस.पी. 1 मि.ली. प्रति लीटर या क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी., 2 मि.ली. प्रति लीटर या एसीफेट 75 एस.पी. 2 ग्राम प्रति लीटर या मोनोक्रोटोफॉस 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

गंधी बग

- **लक्षण:** भारत के कुछ हिस्सों में यह धान का प्रमुख कीट है, जो खेत में दुर्गन्ध पैदा करता है इसलिए इसे गंधी बग कहते हैं। धूप के समय ये कीट पौधे की छाया वाले हिस्से पर रहते हैं।

गंधी बग

- मादा, पत्ती पर एक रेखा में अंडे देती है। अंडे गोल तथा भूरे रंग के होते हैं। 6-7 दिनों में शिशु अंडों से बाहर निकल आते हैं। वयस्क तथा शिशु दोनों ही दूधिया अवस्था में दानों से रस चूसकर उनको खाली कर देते हैं। ग्रसित दानों पर काली फफूंद के साथ काले या भूरे धब्बे दिखाई देते हैं। जल्दी पकने वाली प्रजातियों की तुलना में देर से पकने वाली प्रजातियां इसका ज्यादा शिकार होती हैं। इस कीट के अधिक प्रकोप से लगभग 50 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है।
- **नियंत्रण:** गंधी बग के नियंत्रण हेतु नाइट्रोजन उर्वरक का संतुलित प्रयोग करें। एक क्षेत्र के खेतों में बुआई तथा रोपाई एक ही समय पर करें। आवश्यकतानुसार मैलाथियॉन 50 ई.सी. 2 मि.ली. या एसीफेट 75 एस.पी. 2 ग्राम प्रति लीटर या क्विनालफॉस 25 ई.सी. 2 मि.ली./लीटर या डी.डी.वी.पी. 76 ई.सी. 1.5 मि.ली./लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें या मैलाथियॉन पाउडर 25 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

तनाछेदक कीट

- **लक्षण:** धान में तनाछेदक कीटों की 2-3 प्रजातियां पाई जाती हैं। इनमें पीला एवं गुलाबी तनाछेदक मुख्य हैं। पीला तनाछेदक हानिकारक और विशिष्ट कीट है। गुलाबी तनाछेदक बहुफसल भोगी है। धान-गेहूं फसलचक्र में कीट का प्रकोप ज्यादा होता है। इस कीट की गिडार ही नुकसान पहुंचाती है। फसल की प्रारंभिक अवस्था में इसके प्रकोप से पौधों का मुख्य तना सूख जाता है।

- **नियंत्रण:** अगर डेड हार्ट की संख्या 5 प्रतिशत या ज्यादा हो जाए, तो इसके नियंत्रण के लिए कार्बोफ्यूरॉन 3 जी 20 कि.ग्रा. या डाइमेक्रॉन 590 मि.ली. या मोनोक्रोटोफॉस (36 ई.सी.) 1.4 लीटर या कार्टेप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी 25 कि.ग्रा. या क्विनालफॉस (5 जी) 20 कि.ग्रा. या फोरेट (10 जी) 10 कि.ग्रा. या एसीफेट 75 एस.पी., 2 ग्राम प्रति लीटर या फ्यूराडॉन (3 जी) 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर या क्विनालफॉस 20 ई.सी. प्रति 2 मि.ली. प्रति लीटर की दर से 500-700 लीटर पानी में घोलकर 3-4 सें.मी. खड़े पानी में छिड़काव करें। इसे प्रकाश प्रपंच द्वारा पकड़कर भी रोकथाम की जा सकती है। रोपाई के 30 दिनों बाद से ट्राइकोकार्ड 1-1.5 लाख अंडे प्रति हैक्टर प्रति सप्ताह की दर से 2-6 सप्ताह तक प्रयोग करें।

भूरा पादप फुदका कीट

- **लक्षण:** ये कीट भूरे रंग के होते हैं और पौधों की निचली सतह पर कल्लों के बीच रहकर तने एवं पत्तियों का रस चूसते हैं।
- **नियंत्रण:** नाइट्रोजन का सीमित प्रयोग करें तथा खेत में लगातार पानी भरकर न रखें। आवश्यकतानुसार नीम के तेल का 1.5 लीटर/हैक्टर की दर से छिडकाव करें या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. 1 मि.ली. 3 लीटर पानी या बुप्रोफेजिन 25 एस.एल. 1 मि.ली. पानी या क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 2 मि.ली. पानी या दानेदार कार्बोफ्यूरॉन 3 जी 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

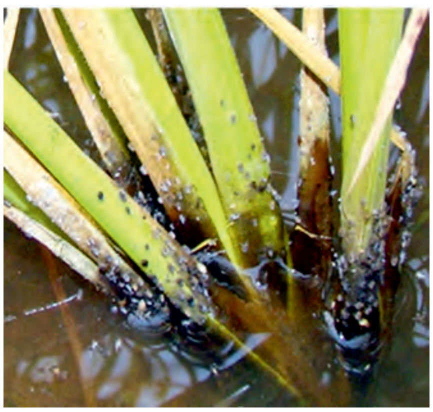

भूरा पादप फुदका कीट

मक्का

- **जल प्रबंधन:** मक्का की फसल में अधिक वर्षा होने की स्थिति में खेत से जल निकास की व्यवस्था अवश्य करें। फसल में नर मंजरी निकलने की अवस्था एवं दाने की दूधियावस्था सिंचाई की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। यदि विगत दिनों में वर्षा न हुई हो या नमी की कमी हो, तो सिंचाई अवश्य करें।

पौध संरक्षण

तुलासिता रोग

- **लक्षण:** इस रोग में पत्तियों पर पीली धारियां पड़ जाती हैं। पत्तियों के नीचे की सतह पर सफेद रुई के समान फफूंदी दिखाई देते हैं। ये धब्बे बाद में गहरे अथवा लाल भूरे पड़ जाते हैं। रोगी पौधे में दाने कम बनते हैं या बनते ही नहीं हैं और पौधे बौने एवं झाड़ीनुमा हो जाते हैं।

पूसा जवाहर संकर मक्का-1

- **नियंत्रण:** इनकी रोकथाम के लिए जिंक मैंग्नीज कार्बामेट या थीरम-80 की 2.0 कि.ग्रा. मात्रा का छिड़काव प्रति हैक्टर की दर से पानी में घोलकर करना चाहिए।

तनाबेधक सुंडी

- **लक्षण:** यह मक्के के लिए सबसे अधिक हानिकारक कीट है। इसकी सुंडियां 20-25 मि.मी. लम्बी और स्लेटी सफेद रंग की होती हैं। इनका सिर काला होता है और चार लम्बी भूरे रंग की रेखा होती है। इसकी सुंडियां तनों में सुरंग करके पौधों को खा जाती हैं। इससे छोटी फसल में पौधों की गोभ सूख जाती है। बड़े पौधों में ये बीच के पत्तों पर सुरंग बना देती हैं। इस कीट के प्रकोप से पौधे कमजोर हो जाते हैं और पैदावार बहुत कम हो जाती है।
- **नियंत्रण:** तनाबेधक कीट के नियंत्रण के लिए कार्बोफ्यूरॉन 3 जी 20 कि.ग्रा. अथवा फोरेट 10 जी 20 कि.ग्रा. अथवा डाइमेथोएट 30 ई.सी. 1.0 लीटर अथवा क्विनालफॉस 25 ई.सी. 1.50 लीटर अथवा मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. की 1.25 लीटर मात्रा को प्रति हैक्टर की दर से 500-600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिये।

फाल आर्मी वर्म

- **लक्षण:** इस कीट के युवा लार्वा पत्ती की सतह को खुरचते हैं एवं बड़े लार्वा पौधे के केंद्रीय भाग को खाते हैं। इससे व्यापक रूप से पत्तियां झड़ जाती हैं। नर मंजरी एवं भुट्टे भी लार्वा द्वारा खाए जाते हैं।
- **नियंत्रण:** अंतिम जुताई के समय 250 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से नीम की खली का प्रयोग करें। 4 मि.ली./कि.ग्रा. बीज की दर से सायन्ट्रानिलिप्रोल 19.8 प्रतिशत + थायमेथोक्साम 19.8 प्रतिशत एफएस से बीज उपचार करें। इससे बचाव हेतु 3 पंक्तियों में लोबिया, तिल, लाल चना या सूरजमुखी और चारा ज्वार की सीमांत फसल उगाएं। इसके अतिरिक्त 2 नग/हैक्टर की दर से FAW फेरोमोन ट्रैप लगाएं। प्रारंभिक अवस्था (15-20 दिन) पर एजाडिरेक्टिन 1500 पीपीएम 2.5 लीटर/हैक्टर या क्लोरेंट्रानिलिप्रोएल 18.5 एससी 200 मि.ली./हैक्टर (या) फ्लूबेंडियामाइड 480 एससी 250

ज्वार

- **सिंचाई:** ज्वार से अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए वर्षा न होने या नमी की कमी होने पर बाली निकलने के समय तथा दाना भरते समय सिंचाई अवश्य करें।

पौध संरक्षण

अर्गट रोग

- **लक्षण:** यह रोग *स्फैसेलिया सॉरघाइ* नामक कवक द्वारा फैलता है। संकर ज्वार में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। इस रोग के बीजाणु हवा द्वारा फैलते हैं। इस रोग का प्रकोप फसल में फल आने के समय होता है। पुष्प शाखा पर स्थित स्पाइकिल से हल्के गुलाबी रंग का गाढ़ा एवं चिपचिपा शहद जैसा पदार्थ निकलता है, जो मनुष्य तथा पशुओं दोनों के लिए हानिकारक होता है।
- **नियंत्रण:** अर्गट रोग से ग्रसित भुट्टों को काटकर जला देना चाहिए। भुट्टों में दाना बनने की अवस्था पर थीरम का 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर फूल आने के समय 7-10 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करके रोग के प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है। दूसरे छिड़काव के साथ उक्त दवा के साथ 0.1 प्रतिशत कार्बेरिल नामक कीटनाशी भी मिला देना चाहिए।

दाने का स्मट (कंड) रोग

- **लक्षण:** यह ज्वार का सबसे हानिकारक कवकजनित रोग है। इसका प्रकोप पौधे में भुट्टे निकलते समय होता है। यह मुख्यत: बीज द्वारा फैलता है। इस कवक के बीजाणु अंकुरण के समय जड़ों द्वारा पौधों में प्रवेश कर जाते हैं। पौधों में भुट्टे आने पर दानों की जगह कवक के काले बीजाणु भर जाते हैं। बीजाणु बाहर से एक कड़ी झिल्लीदार परत से ढके रहते हैं। इसके फटने पर वे बाहर आकर फैल जाते हैं।
- **नियंत्रण:** इसकी रोकथाम के लिए बीज को किसी कवकनाशी दवा जैसे-वीटावैक्स पॉवर या कैप्टॉन से 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बुआई करें।

माहूं कीट

- **लक्षण:** इस कीट के शिशु एवं वयस्क पौधों का रस चूसते रहते हैं। इससे पौधों की पत्तियों के किनारे पर पीली-नीली धारियां दिखाई पड़ती हैं। इस कीट के प्रकोप से तरल द्रव बनने लगता है। इससे फसल पर फफूंदी का प्रकोप होने लगता है और दाने की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- **नियंत्रण:** इसकी रोकथाम के लिए मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. की 1.0 लीटर मात्रा का प्रति हैक्टर की दर से 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।
- **कटाई:** ज्वार की फसल पकने पर भुट्टे के हरे दाने सफेद या पीले रंग में बदल जाते हैं। भुट्टों में दानों के अन्दर जब नमी घटकर 20 प्रतिशत तक रह जाए, तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। संकर ज्वार में फसल पकने तक पौधे हरे बने रहते हैं। अत: खड़ी फसल से भुट्टों की कटाई हंसिया या दरांती से करके, फसल को चारे के रूप में पशुओं को खिलाते रहते हैं। पौधों से भुट्टे अलग करने के बाद, पौधों को सुखाकर सूखे चारे के रूप में रखा जाता है।

मि.ली./हैक्टर की दर से छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त मेटाराइजियम एनिसोप्लाई 2.5 कि.ग्रा./हैक्टर या एमामेक्टिन बेंजोएट 5 एसजी 200 ग्राम/हैक्टर या नोवालुरोन 10 ई.सी. 750 मि.ली./हैक्टर या स्पाइनेटोरम 11.7 एससी 250 मि.ली./हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

- **कटाईः** मक्का की दाने के लिए कटाई तब करें, जब भुट्टों के ऊपर की पत्तियां सूखने लगें तथा दाना सख्त हो जाएं। इस समय दानों में 25-30 प्रतिशत नमी रहती है। कटाई के बाद भुट्टों को एक सप्ताह के लिए धूप में सुखाएं तथा बाद में कॉर्न शेलर से दानों को भुट्टों से अलग कर दें।
- **बेबीकॉर्न की तुड़ाईः** अधिक गुणवत्ता वाले बेबीकॉर्न के लिए तुड़ाई रेशे निकलने के 2-3 दिनों के अंतराल पर ही करें। स्वीटकॉर्न में रेशा निकलने के लगभग 20-22 दिनों के बाद वाली अवस्था तुड़ाई के लिए उपयुक्त है। इस समय इनमें शुगर की मात्रा सबसे अधिक होती है।

बाजरा

- **टॉप ड्रेसिंगः** देर से बोई गई बाजरा की संकर प्रजातियों में नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा यानी 40-50 कि.ग्रा. की टॉप ड्रेसिंग बुआई के 25-30 दिनों बाद करें।

पौध संरक्षण

अर्गट रोग

- **लक्षणः** यह रोग केवल भुट्टों के कुछ दानों पर ही दिखाई देता है। इसमें दाने के स्थान पर भूरे काले रंग के सींक के आकार की गांठें बन जाती हैं। इन्हें स्कलेरेशिया कहते हैं। संक्रमित फूलों में फफूंद विकसित होती है, जिनमें बाद में मधु रस निकलता है। प्रभावित दाने मनुष्य एवं पशुओं के लिए हानिकारक होते हैं।
- **नियंत्रणः** इस रोग की रोकथाम हेतु थीरम 80 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 2 कि.ग्रा. अथवा मैंकोजेब 75 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. 2.0 कि.ग्रा. अथवा रिडोमील 25 डब्ल्यू.पी. (1000 पीपीएम) बुआई के 20-25 दिनों बाद प्रति हैक्टर 500-600 लीटर पानी में घोलकर 10 दिनों के अंतराल पर 2 छिड़काव करना चाहिये।

बाजरा

हरित बाली रोग

- **लक्षणः** यह फंफूद से पैदा होने वाला रोग है। इसके प्रभाव से पत्तियों का रंग पीला पड़ जाता है, पौधों की बढ़वार रुक जाती है। सुबह के समय पत्तियों की निचली सतह पर एक सफेद चूर्ण जैसा पदार्थ दिखाई देता है। यह रोग फसल पर बालियां आने की अवस्था में प्रकोप करता है। अतः इसे हरी बालियों वाला रोग कहते हैं। इसमें बालियों पर दानों के स्थान पर छोटी-छोटी हरी पत्तियां उग आती हैं।
- **नियंत्रणः** खेत में रोगग्रस्त पौधों को समय-समय पर उखाड़कर जला देना चाहिए। बुआई से पहले बीजों को एप्रोन-35 एस.डी. या रिडोमील एमजेड-72 से 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित करें।
- रोग की व्यापकता को कम करने के लिए रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखाई देते ही कवकनाशी रिडोमील एमजेड-72 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

मिज कीट

- **लक्षणः** इसका असर बालियों के आते समय देखा गया है।
- **नियंत्रणः** इसके साथ-साथ पत्तियों पर खाने वाले कीटों का असर भी दिखाई दे, तो 3 प्रतिशत फोरेट पाउडर को 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से छिड़कना चाहिए।
- **कटाईः** जब फसल पककर तैयार हो जाए तो उस अवस्था में बालियों को काटकर अलग कर लेना चाहिए। इन बालियों को एक जगह खलिहान में इकट्ठा करके सुखा लें और थ्रेसर से दाना अलग कर लेते हैं।

मूंग, उड़द, अरहर और राजमा

- **जल प्रबंधनः** कलियां बनते समय वर्षा न होने की स्थिति में खेत में प्रर्याप्त नमी रखने के लिए सिंचाई करें।
- **राजमा की बुआईः** मैदानों के उत्तरी क्षेत्रों में राजमा उगाने में किसानों ने रुचि दिखाई है। इस फसल की सिंचित

चना फलीबेधक

- **लक्षणः** इस कीट के लार्वा पौधे के विभिन्न भागों, जैसे-पत्तियों, फूलों और फलियों को खाकर नुकसान पहुंचाते हैं। वयस्क लार्वा मुख्य रूप से क्लोरोफिल खाकर और कंकालनुमा पत्तियां बनाकर पौधे की पत्तियों को नष्ट कर देते हैं। जैसे-जैसे वे बड़े होते हैं, लार्वा फलियों में छेद कर देते हैं। इसके बाद ये विकसित हो रहे बीजों को खाते हैं और उपज को भारी नुकसान पहुंचाते हैं।
- **नियंत्रणः** इस कीट की रोकथाम के लिये सबसे पहले यौन आकर्षण जाल (फेरोमैन ट्रैप) द्वारा नियमित निगरानी करते रहें। जैसे ही 5-6 नर कीट/ट्रैप 24 घंटे के अन्दर मिलना शुरू हो जाये, नियंत्रण तकनीक अपनायें। एन.पी.वी. 250 लार्वा तुल्य का छिड़काव करें एवं परभक्षियों के लिये खेत में 'टी' आकार के लकड़ी के स्टैंड लगा दें। इसके साथ ही नीम की निबौली के सत्त का 5 प्रतिशत घोल का छिड़काव लाभदायक सिद्ध हुआ है। रासायनिक नियंत्रण के लिए इंडोक्साकार्ब 1 मि.ली./लीटर या मोनोक्रोटोफॉस (0.04 प्रतिशत) प्रति लीटर पानी का प्रथम छिड़काव या मिथाइल डिमेटान 0.05 प्रतिशत का प्रयोग या क्विनालफॉस (25 ई.सी.) की 1.25 लीटर मात्रा को 800 लीटर पानी में घोलकर एक हैक्टर में छिड़काव करें।
- **कटाईः** वर्षा ऋतु में जब पौधों की अधिकतर फलियां पक कर काली हों, तो फसल काटी जा सकती है। वहीं जब 50 प्रतिशत फलियां पक जाएं, फलियों की पहली तुड़ाई कर लेनी चाहिए। इसके बाद दूसरी बार फलियों के पकने पर कटाई की जा सकती है। फलियों को खेत में सूखी अवस्था में अधिक समय तक छोड़ने से चटक जाती हैं और दाने बिखर जाते हैं। इससे उपज की हानि होती है। अतः फलियों से बीज को समय पर निकाल दें।

क्षेत्रों में 10 सितंबर तक बुआई कर दें, नहीं तो पकने के समय ठण्ड पड़ने से दाने कम बनते हैं।

- राजमा की उन्नत प्रजातियां जैसे-उजाला, वी.एल. 63 तथा हिम-1 को 45-50 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ राइजोबियम जैव उर्वरक से उपचारित करें तथा 1 फीट की दूरी पर पंक्तियों में बुआई कर दें।
- बुआई के समय 25 कि.ग्रा. यूरिया तथा 25 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट खेत में बीज के नीचे पोरा या केरा विधि से डालें। पहली सिंचाई बुआई के 17 दिनों तथा दूसरी 30 दिनों बाद करें। बुआई के 20 दिनों बाद एक निराई-गुड़ाई भी करें।

सूरजमुखी

- **जल प्रबंधन:** फसल में वर्षा न होने की स्थिति में हैड बनते एवं दाना भरते समय आवश्यकतानुसार हल्की सिंचाई करें।

- **परागण विनियमन:** सूरजमुखी से अधिक उपज लेने के लिए मधुमक्खी के डिब्बों को खेत के किनारे रखें। यह परागण में मददगार है। मधुमक्खी पालन न करने की स्थिति में सूरजमुखी में अच्छी तरह फूल आ जाने पर हाथ में दस्ताने पहनकर या किसी मुलायम रोयेंदार कपड़े को लेकर फूल के मुंडक पर चारों ओर धीरे से घुमा दें। यह क्रिया प्रात: काल 7.30 बजे तक कर लें।
- **पौध संरक्षण:** सूरजमुखी में हैडरॉट, में पहले तने और फिर मुंडकों पर काले धब्बे बनते हैं। इनकी रोकथाम हेतु मैंकोजेब 0.3 प्रतिशत का मुंडक बनते समय छिड़काव करें। इसके साथ ही मुंडकों को चिड़ियों से बचाने के लिए रंगीन चमकीली पन्नियों को फसल के आधे से एक मीटर ऊपर बांधकर सुरक्षा करें।

पौध संरक्षण

पीला मोजैक

- **लक्षण:** यह रोग मूंग की रोग ग्राही प्रजातियों में अधिक व्यापक होता है। जिन पत्तियों में पीली कुर्बरता (मोजैक) या पीला ऊतकक्षय के मिले-जुले लक्षण दिखाई देते हैं, उनके आकार छोटे रह जाते हैं। ऐसे पौधों में बहुत कम एवं छोटी फलियां होती हैं। ऐसी फलियों का बीज सिकुड़ा हुआ, मोटा एवं छोटा होता है। यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है।
- **नियंत्रण:** इसके नियंत्रण के लिए खेत में रोगी पौधे दिखाई दें, तो डायमेथाक्सॉम या इमिडाक्लोप्रिड 0.02 प्रतिशत या मेटासिस्टॉक्स 0.1 प्रतिशत का छिड़काव कर दें। छिड़काव 15-20 दिनों के अंतराल पर दोहराएं और कुल 3-4 छिड़काव करें। प्रति हैक्टर 800 लीटर में बना घोल पर्याप्त होता है।

अरहर की फलीबेधक मक्खी

- **लक्षण:** उत्तरी भारत में यह कीट अरहर की फसल को काफी हानि पहुंचाता है। इस कीट द्वारा 20-25 प्रतिशत तक अरहर की फसल को प्रतिवर्ष नुकसान होता है।
- **नियंत्रण:** इसके नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफॉस (0.04 प्रतिशत घोल) नामक दवा का छिड़काव करना चाहिए।

फली बग

- **लक्षण:** इस कीट के प्रौढ़ एवं वयस्क पत्तियों, कलियों, फूलों तथा फलियों के रस को चूसते हैं। इससे फलियां सिकुड़ जाती हैं और सही तरीके से नहीं बन पाती हैं।
- **नियंत्रण:** इसके नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफॉस (0.04 प्रतिशत घोल) या डाइमिथोएट (0.03 प्रतिशत घोल) का छिड़काव करना चाहिए।

सोयाबीन

- **जल प्रबंधन:** सोयाबीन की फसल में वर्षा न होने की स्थिति में फूल एवं फली बनते समय आवश्यकतानुसार हल्की सिंचाई करें।

पौध संरक्षण

पीला मोजैक

- **लक्षण:** खेतों में पौधे पीले पड़े हुए

सोयाबीन

स्पष्ट दिखाई देते हैं। ऐसे पौधों में बहुत कम एवं छोटी फलियां होती हैं, जिससे उपज कम हो जाती है। यह रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है।

- **नियंत्रण:** सोयाबीन में पीला मोजैक रोग की रोकथाम के लिए प्रभावित पौधों को निकालकर डाइमेथोएट 30 ई.सी. 1 लीटर या मिथाइल-ओ-डिमेटॉन (25 ई.सी.) की एक लीटर मात्रा को 800 लीटर पानी में घोलकर आवश्यकतानुसार 10-15 दिनों के अंतराल पर 1-2 छिड़काव करें।

तम्बाकू की इल्ली एवं रोयेंदार इल्ली

- **लक्षण:** तम्बाकू की इल्ली एवं रोयेंदार इल्ली छोटी अवस्था में झुण्ड में रहकर एक ही पौधे की पत्तियों को खाती हैं।
- **नियंत्रण:** कीट से ग्रसित पौधों को नष्ट कर देने से इनके प्रकोप से बचा जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर रासायनिक कीटनाशक क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. (1.5 लीटर/हैक्टर) या

मूंगफली

- **जल प्रबंधन:** मूंगफली में खूटियां (पैगिंग) तथा फलियां बनते समय खेत में पर्याप्त नमी बनाये रखें एवं अधिक वर्षा होने की स्थिति में खेत में जल निकास की व्यवस्था करें।
- **पौध संरक्षण:** टिक्का रोग की रोकथाम के लिए जिंक मैंग्नीज कार्बोमेट 2 कि.ग्रा. अथवा जिनेब 75 प्रतिशत की 2.5 कि.ग्रा. मात्रा प्रति हैक्टर की दर से 800 लीटर पानी में घोलकर 10 दिनों के अंतराल पर 1-2 छिड़काव करें। इसके लिए ट्राइकोडर्मा विरिडी (5 प्रतिशत) और वर्टीसिलीयम लिसनायी (5 प्रतिशत) का छिड़काव उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

क्विनालफॉस 25 ई.सी. (1.5 लीटर प्रति हैक्टर) या मिथोमिल 40 एस.पी. (1.0 कि.ग्रा./हैक्टर) का उपयोग करें।

- पत्ती खाने वाली इल्लियों के नियंत्रण हेतु जैविक कीटनाशकों का प्रयोग करें। बैक्टीरिया आधारित बायोबिट, डायपेल, बायोआस्प, डेल्फिन, हाल्ट अथवा फफूंद आधारित बायोरिन, डिस्पेल को 1 कि.ग्रा. या 1 लीटर प्रति हैक्टर की दर से अथवा वायरस आधारित कीटनाशक को 250 एल.ई. की दर से फूल आने अथवा इल्लियों का प्रकोप शुरू होने की अवस्था पर छिड़काव करें।

तिल

- **जल प्रबंधन:** यदि बरसात न हुई हो, तो फूल निकलते समय एवं दाना बनते समय भूमि में पर्याप्त नमी बनाये रखने के लिए सिंचाई अवश्य करें।
- **कटाई:** तिल की पत्तियां, जब पीली होकर गिरने लगें तथा पत्तियां हरा रंग लिए हुए पीली हो जाएं, तब समझना चाहिए कि फसल पककर तैयार हो गयी है। इस समय फसल की कटाई कर लेनी चाहिए।
- देरी से कटाई करने पर फलियों के चटकने से बहुत अधिक नुकसान होता है। कटाई, संपूर्ण पौधे सहित नीचे से करनी चाहिए। कटाई के बाद बंडल बनाकर खेत अथवा खलिहान में ही जगह-जगह पर छोटे-छोटे ढेर में खड़े कर देने चाहिए। जब अच्छी तरह से पौधा सूख जाए, तब डंडे की सहायता से पौधों को पीटकर या हल्का झाड़कर बीज निकाल लेने चाहिए। इसके बाद दानों को अच्छी तरह साफ करने के बाद धूप में सुखाएं। दाने में नमी की मात्रा लगभग 8-10 प्रतिशत हो, तब भंडार पात्रों/भंडार गृहों में भंडारित करें।
- **उपज:** उन्नत तकनीक अपनाते हुए एवं उचित वर्षा होने पर असिंचित अवस्था में उगायी गयी फसल से 4-5 क्विंटल तथा सिंचित अवस्था में 6-8 क्विंटल प्रति हैक्टर तक उपज प्राप्त होती है।

शरदकालीन गन्ना

- **समय एवं खेत की तैयारी:** शरदकालीन गन्ने की बुआई का उपयुक्त समय वर्षा समाप्त होने एवं जाड़ा शुरू होने के मध्य सितंबर से अक्टूबर तक ही सीमित रहता है। अत: इस बुआई का लाभ उठाने की दृष्टि से समय से बुआई करें। जिन खेतों में हरी खाद हेतु ढैंचा एवं सनई की बुआई करके पलट दिया गया था, उसकी अच्छी तरह से जुताई करके खेत की तैयारी करें।

गन्ना

- **बुआई की विधि:** गन्ने की बुआई यदि नाली विधि द्वारा करनी है, तो नालियां शीघ्र ही बना लें। समतल विधि द्वारा बुआई के समय दो पंख वाले हल से कूड़ खोलकर बुआई की जाये। दोनों विधियों में गन्ने की पंक्ति पूर्व से

अगेती तोरिया

- **उपयुक्त जलवायु एवं मृदा:** तोरिया अथवा लाही की फसल के लिए 25 से 30 डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। अधिक या कम तापमान होने पर फसल में विकृति आने लगती है। तोरिया की खेती से अच्छी उपज के लिये रेतीली दोमट एवं हल्की दोमट मृदा अधिक उपयुक्त है। मृदा क्षारीय एवं लवणीय नहीं होनी चाहिये। खेत में जल निकासी का उचित प्रबंधन होना चाहिए।

- **समय:** तोरिया की खेती अधिकांशत: बारानी की जाती है। बारानी खेती के लिये खेत को खरीफ में परती छोड़ना चाहिए। तोरिया की बुआई के लिए सितंबर का दूसरा पखवाड़ा सबसे उत्तम है। यदि खेत मक्का, बाजरा, मूंग, उड़द, तिल, लोबिया आदि फसलों के कटने से खाली हो, तो तोरिया की फसल सितंबर के पहले सप्ताह में लगा दें। इससे बरसात की नमी का पूरा उपयोग होगा तथा 6-7 क्विंटल पैदावार भी मिलेगी।
- **खेत की तैयारी:** पहली जुताई वर्षा ऋतु में मिट्टी पलटने वाले हल से करें। इसके बाद 3 से 4 जुताई करें। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगायें, जिससे भूमि में नमी की कमी न हो और मिट्टी भुरभुरी हो जाये। सिंचित खेती के लिये भूमि की तैयारी बुआई के 3 से 4 सप्ताह पूर्व प्रारंभ करें।
- **किस्मों का चयन:** इसके लिए उन्नत प्रजातियां जैसे टाइप-9, भवानी, टाइप-1, पी.टी.-303, पी.टी-507, संगम टी एल 15 एवं पूसा अग्रणी अच्छी प्रजातियां हैं।
- **बीजदर, दूरी एवं थिनिंग:** तोरिया की बुआई बीज शोधन के उपरान्त 4-5 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर की दर से 30×10-15 सें.मी. की दूरी पर 3-4 सें.मी. गहरे कूड़ों में करें। घने पौधों को बुआई के 15 दिनों के अंदर निकालकर पौधों की आपस की दूरी 10 से 15 सें.मी. कर देनी चाहिए।
- **पोषक तत्व प्रबंधन:** तोरिया की फसल में खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करें। मृदा परीक्षण न होने पर सिंचित दशा में बुआई के समय 60-80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। असिंचित दशा में 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 30 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। साथ ही 30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से सल्फर का प्रयोग अवश्य करें।
- **खरपतवार प्रबंधन:** खरपतवारों के नियंत्रण के लिए बुआई से पूर्व फ्लुक्लोरालिन 2.0 लीटर प्रति हैक्टर की दर से 500 से 600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। खरपतवार ज्यादा हो तो पेण्डीमेथिलीन 30 ई.सी. का 3.3 लीटर की दर से 800 लीटर पानी में घोलकर बुआई के बाद और जमाव से पहले छिड़काव करना चाहिए। फसल को खरपतवारों से मुक्त रखने के लिए 20-25 दिनों में एक बार निराई-गुड़ाई करना आवश्यक है। यह देखा गया है कि इस निराई के बाद सरसों की फसल अच्छी तरह और जल्दी से बढ़ती है।

पश्चिम ही रखें एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी 90 सें.मी. रखें।

- **बीज का चयन एवं बीजदर:** बुआई हेतु बीज प्रमाणित पौधशालाओं से ही लें। बुआई हेतु देर से पकने वाली प्रजातियों का चयन करना चाहिये। बुआई के समय तीन आंख के टुकड़े काटने चाहिये। प्रति हैक्टर बुआई हेतु गन्ने की मोटाई के अनुसार 50 से 60 क्विंटल बीज अथवा 37,000-40,000 तक तीन आंख वाले टुकड़े की आवश्यकता होती है।
- **बीजोपचार:** बुआई से पूर्व तीन आंख के टुकड़ों को किसी पारायुक्त दवा, जैसे-एरीकान 2 प्रतिशत या 6 प्रतिशत या एगलाल 3 प्रतिशत अथवा टफासान 3 प्रतिशत या 6 प्रतिशत में से किसी एक घोल में डुबोकर बोना चाहिए। 3 प्रतिशत खुराक वाली दवा की 560 ग्राम मात्रा या 6 प्रतिशत खुराक वाली दवा की 280 ग्राम मात्रा को 112 लीटर पानी में घोल तैयार करके बीज को उपचारित करें।
- **मिश्रित खेती:** शरदकालीन बुआई के साथ मिश्रित खेती करना आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद साबित हुआ है। इसलिये रबी की फसलें जिन क्षेत्रों में अधिक प्रचलित हैं, उगानी चाहिए। मिश्रित खेती में प्राय: बौनी प्रजातियों के गेहूं, मटर, धनिया, आलू आदि सरलतापूर्वक ले सकते हैं।
- **पोषक तत्व प्रबंधन:** गन्ने की फसल में खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करें। बुआई के समय 25 से 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टर प्रयोग करना चाहिये।

बसन्तकालीन गन्ना

- **बंधाई:** इस माह में गन्ने की तीसरी बंधाई का कार्य पूरा कर लें। पहली पंक्ति के अन्दर ही सवा से डेढ़ मीटर की ऊंचाई पर गन्ने को बांध दें। आगे चलकर दोनों पंक्तियों के गन्ने को एक दूसरे से बांध दें। ध्यान रहे, बांधते समय ऊपर की पत्तियां न टूटें।
- **पौध संरक्षण:** पायरीला कीट की रोकथाम हेतु प्रति हैक्टर फॉस्फेमिडान 400 मि.ली. या मिथाइल डिमेटॉन 1.5 लीटर 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। गन्ने में गुरदासपुर बेधक एवं शीर्ष बेधक (टॉप बोरर) की रोकथाम के लिए क्लोरोपायरीफॉस 20 प्रतिशत ई.सी. 1.5 लीटर अथवा मोनोक्रोटोफॉस 36 प्रतिशत की 2.0 लीटर मात्रा का 800-1000 लीटर मात्रा में घोलकर छिड़काव करें।

कपास

- **बढ़वार विनियमन:** अमेरिकन कपास में ज्यादा फैलाव रोकने के लिए 30 मि.ली. साइकोसिल (70 प्रतिशत) को 300 लीटर पानी में घोलकर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें। इसके साथ कीटनाशक तथा यूरिया भी मिलाकर छिड़का जा सकता है। कपास में फूल आने पर नेप्थलीन एसिटिक एसिड का 50 मि.ली. फिर 20 दिनों बाद 70 मि.ली. का घोल छिड़कने से फूल एवं टिण्डे गिरते नहीं हैं तथा टिण्डे भी बड़े लगते हैं। कपास में आखिरी सिंचाई 33 प्रतिशत टिण्डे खुलते समय कर दें, इसके बाद कोई सिंचाई न करें।
- **पौध संरक्षण:** कपास के पौधों पर दीमक, हरे तिल्ले तथा कलियों, फूल एवं टिण्डों पर अमेरिकन सुंडी हेलीओथिस प्रकोप होने पर 1 लीटर क्लोरोपायरीफॉस पानी में 70 मि.ली. पत्तों पर चिपकने वाला पदार्थ डालकर छिड़कें।
- कपास में अमेरिकन बॉल वर्म, पिंक बॉल वर्म तथा स्पॉटेडे बॉल वर्म फसल को बहुत हानि पहुंचाते हैं। फलछेदक के नियत्रंण के लिए बीजों को बुआई से पूर्व इमिडाक्लोप्रिड से 7.5 ग्राम/कि.ग्रा. की दर से उपचारित कर लेना चाहिए।
- फसल के 45 तथा 55 दिनों के होने पर 5 प्रतिशत नीम के बीज का अर्क का छिड़काव करना चाहिए। अमेरिकन बॉल वर्म से फसल प्रभावित होने पर एन.पी.वी. की 250 एल.ई.मात्रा/हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए। बीटी नुस्खे की मात्रा 1.5 कि.ग्रा./हैक्टर का भी छिड़काव करना चाहिए।

कपास

चारा फसलें

जल, नाइट्रोजन एवं कटाई प्रबंधन: ज्वार, बाजरा, मक्का, ग्वार आदि चारा फसलों में वर्षा न होने अथवा सूखे की स्थिति होने पर हल्की सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। बहुवर्षीय घासों में कटाई के बाद 30-40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर का छिड़काव अवश्य करें। पशुधन की आवश्यकतानुसार बहुवर्षीय नेपियर, गिन्नी, सिटेरिया की कटाई करें। वर्षा के जल की पर्याप्त उपलब्धता बने रहने पर भी इन घासों को स्वयं के ज्ञान के आधार पर अंतराल निर्धारित कर आवश्यकतानुसार पानी लगाएं और कटाई निरंतर करते रहें।

बरसीम: सितंबर में लगी फसल, नवंबर से मई तक 4-6 कटाइयों में 300-370 क्विंटल हरा चारा देती है। इसे पशु बड़े चाव से खाते हैं तथा अधिक दूध देते हैं। इसे हल्की खारी मृदा में भी उगाया जा सकता है। बरसीम की प्रजाति टी-5, टी-26, टी-780, वरदान, मेस्कावी, आदि की बुआई मध्य सितंबर से 30 नवंबर तक कर दें। बरसीम का 25-30 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। बुआई से पूर्व बीज को राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें। बरसीम की फसल की बुआई के समय 25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस का प्रयोग करें।

- **चुनाई:** कपास में फूल काफी लम्बी अवधि तक आते हैं। सभी पौधों पर फूल एक साथ नहीं आते और प्रत्येक पौधे पर भी सारे फूल एक साथ नहीं आते हैं। फसल बोने के दो-ढाई महीने बाद फूल खिलने शुरू हो जाते हैं। फूलों के साथ न खिलने के कारण कपास की चुनाई काफी समय तक चलती रहती है। जब काफी संख्या में गूले पक जाएं तो पहली चुनाई की जाती है।
- देसी कपास सितंबर में चुनने के लिए तैयार होती है। इसके लिए 10 दिनों के अंतराल पर सूखी एवं साफ कपास की चुनाई करें। इस प्रकार चुनाई कई बार करनी पड़ती है। आमतौर पर कपास की प्रजाति, वर्षा एवं पंक्तियों की दूरी आदि के आधार पर 3-4 बार चुनाई करते हैं।

सब्जी उत्पादन एवं प्रबंधन

- **कद्दूवर्गीय सब्जियां:** जब फल कच्चे एवं मुलायम हों तब बेल वाली फसलों जैसे-खीरा, तोरई, करेला

लौकी

एवं कद्दू की तुड़ाई कर बाजार भेजें। कद्दूवर्गीय फसल में आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई एवं सिंचाई करें।
- **लोबिया:** इस फसल में आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई एवं सिंचाई करें। तैयार फलियों की तुड़ाई नियमित रूप से 4-5 दिनों के अंतराल में करें।
- **टमाटर:** इसकी अच्छी पैदावार में तापमान का बहुत बड़ा योगदान होता है, जोकि 18 से 27 डिग्री सेल्सियस के बीच उपयुक्त रहता है।
- टमाटर की खेती के लिए उचित जल निकास वाली दोमट मृदा उपयुक्त रहती है जिसका पी-एच मान 6-7 हो। टमाटर की उन्नत और संकर प्रजातियों के बीज की बुआई नर्सरी में करें। अगेती किस्में जैसे-गोल्डन एंकर, पूसा हाइब्रिड-2, पूसा सदाबहार, पूसा रोहिणी, पूसा-120, पूसा गौरव, काशी अभिमान, काशी अमृत, काशी विशेष, पी एच-8, पी एच-4 की बुआई 15 सितंबर तक एवं पछेती किस्मों/संकर किस्मों की बुआई 15 सितंबर के बाद प्रारंभ करें।
- अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए संकर और उन्नत प्रजातियों के लिए

अगेती टमाटर

क्रमशः 250-300 ग्राम और 500-600 ग्राम प्रति हैक्टर बीज पर्याप्त होता है। टमाटर की बौनी किस्मों की रोपाई 60×60 सें.मी. तथा अधिक बढ़ने वाली किस्मों की रोपाई 75×60 सें.मी. पर करें।
- टमाटर की रोपाई के समय प्रति हैक्टर 250 क्विंटल सड़ी गोबर की खाद अथवा 80 क्विंटल नाडेप कम्पोस्ट के साथ 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 80 कि.ग्रा. पोटाश, 20 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट एवं 8 कि.ग्रा. बोरेक्स का प्रयोग करें।
- खरपतवार टमाटर की फसल से पोषक तत्वों, प्रकाश एवं पानी के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं तथा रोगों एवं कीटों को शरण देते हैं। फलों की उत्पादन को 20-80 प्रतिशत तक कम कर देते हैं। खरपतवार फसलों में शुरुआती 4-6 सप्ताह तक अधिक नुकसान करते हैं। सिंचाई के बाद

मटर

मटर की अगेती प्रजातियों की बुआई सितंबर के अंतिम सप्ताह से लेकर अक्टूबर के मध्य तक कर सकते हैं। मटर की खेती के लिए दोमट और हल्की दोमट मृदा उपयुक्त होती है। मटर की अगेती प्रजातियां जैसे-आजाद मटर-3, काशी नंदिनी, काशी मुक्ति, काशी उदय और काशी अगेती प्रमुख हैं। मटर की इन प्रजातियों की सबसे खास बात यह है कि ये 50 से लेकर 60 दिनों में तैयार हो जाती है। इससे खेत जल्दी खाली हो जाता है और किसान दूसरी फसलों की बुआई भी कर सकते हैं। बुआई के लिए प्रति हैक्टर 80 से लेकर 100 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता हरेती है। मटर को बीजजनित रोगों से बचाव के लिए मैंकोजेब 3 ग्राम या थीरम 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। अगेती प्रजातियों के लिए पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की दूरी 30×6-8 सें.मी. पर्याप्त है। खेत की तैयारी के समय प्रति हैक्टर 20-25 टन सड़ी गोबर की खाद के साथ 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 50 कि.ग्रा. पोटाश का प्रयोग करें।

बैंगन एवं मिर्च

रोपाई के 45 दिनों बाद 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं मिर्च में 35 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की दूसरी एवं अन्तिम टॉप ड्रेसिंग करें। तनाछेदक कीट की सुंडी पौधों के प्ररोह को नुकसान करती है तथा बाद में मुख्य तने में घुस जाती है। इसके प्रकोप से छोटे ग्रसित पौधे मुरझाकर सूख जाते हैं एवं बड़े पौधे बौने रह जाते हैं तथा इनमें फल कम लगते हैं। इसके साथ ही फल और तनाछेदक कीट की सुंडी पौधे के प्ररोह एवं फल को हानि पहुंचाती है, ग्रसित प्ररोह मुरझाकर सूख जाते हैं। फलों में सुंडियां टेढ़ी-मेढ़ी सुरंगें बनाती हैं एवं फल का ग्रसित भाग काला पड़ जाता है तथा खाने लायक नहीं रहता। फलछेदक की निगरानी के लिए 5 फेरोमोन ट्रैप प्रति हैक्टर लगाएं। बैंगन में तना एवं फलछेदक कीट की रोकथाम के लिए 5 प्रतिशत नीम बीज अर्क या बी.टी. 1 ग्राम/लीटर या स्पिनोसेड 45 एस.सी. 1 मि.ली./4 लीटर या कार्बेरिल 50 डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम/लीटर या डेल्टामेथ्रिन 1 मि.ली./लीटर का फूल आने से पहले छिड़काव 10-15 दिनों के अंतराल पर करें। मिर्च की फसल में आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई एवं सिंचाई करें। शिमला मिर्च की पौधों की रोपाई 50×40 सें.मी. की दूरी पर करें। रोपाई से पहले 150 क्विंटल सड़ी गोबर की खाद, 75 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 60 कि.ग्रा. पोटाश अन्तिम जुताई के समय खेत में मिलायें।

हल्की निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए पेण्डीमेथिलीन (30 ई.सी.) 1 लीटर/हैक्टर को 200 लीटर पानी में रोपाई से पहले छिड़काव करें।

- **भिण्डी:** इस फसल में आवश्यकता अनुसार निराई-गुड़ाई एवं सिंचाई करें। तैयार फलियों की तुड़ाई नियमित रूप से 4-5 दिनों के अंतराल में करें।
- **आलू:** अगेती फसल की बुआई सितंबर के आखिरी सप्ताह से लेकर अक्टूबर के दूसरे सप्ताह तक की जा सकती है। इसकी खेती के लिए दोमट और बलुई दोमट मृदा, जिसमें जैविक पदार्थ की बहुलता हो, उपयुक्त है।

आलू

- अगेती आलू की कुफरी चन्द्रमुखी, कुफरी कुबेर, कुफरी बहार, कुफरी सूर्या, कुफरी अशोका तथा अल्टीमेटम प्रजातियां मुख्य हैं। खेत की आखिरी जुताई पर 100 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 80 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से बुआई के समय प्रयोग करें। आलू की खेती में तापमान का अधिक महत्व है।
- **फूलगोभी:** पुरानी फूलगोभी की फसल में आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई एवं सिंचाई करें। 50 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हैक्टर की दर से खड़ी फसल में प्रयोग करें। मध्यकालीन फूलगोभी की उन्नत प्रजातियां जैसे-इम्प्रूवड जापानीज, पूसा दीपाली, पूसा केतकी, पन्त शुभ्रा की रोपाई इस महीने में की जा सकती है। खेत की आखिरी जुताई पर 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 100 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 60 कि.ग्रा. पोटाश एवं 10 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

फूलगोभी

- **अन्य गोभीवर्गीय सब्जियां:** बंदगोभी, गांठगोभी, मध्यकालीन एवं पछेती फूलगोभी की नर्सरी में बुआई करें। इससे अक्टूबर में इनकी रोपाई की जा सकती है। पत्तागोभी की रोपाई सितंबर के अन्तिम सप्ताह से भी प्रारंभ कर सकते हैं। रोपाई से पूर्व 200-250 क्विंटल सड़ी गोबर की खाद या 80 क्विंटल नाडेप कम्पोस्ट, 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा., फॉस्फोरस एवं 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से खेत में अन्तिम जुताई के समय मिला दें।
- **मेथी:** यह औषधीय गुणों से भरपूर होती है। इसके सूखे दाने का उपयोग मसालों के रूप में वर्षों से होता आ रहा है। मेथी में वसा, प्रोटीन, रेशा, कार्बोहाइड्रेट, मैग्नीशियम, कैल्शियम, पोटेशियम, आयरन, सल्फर के साथ-साथ विटामिन 'ए', 'सी' एवं निकोटीन भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं।

पालक

पत्ते वाली सब्जियों में कैल्शियम, आयरन, विटामिन 'ए', 'बी' एवं 'सी' काफी मात्रा में होते हैं। पालक की सफलतापूर्वक खेती के लिए ठंडी जलवायु की आवश्यकता होती है। ठंड में पालक की पत्तियों की बढ़वार अधिक होती है, जबकि तापमान अधिक होने पर इसकी बढ़वार रुक जाती है, इसलिए पालक की खेती मुख्यत: शीतकाल में करना अधिक लाभकर होता है। परन्तु पालक की खेती मध्यम जलवायु में वर्षभर की जा सकती है। इसकी सफलतापूर्वक खेती के लिए उचित जल निकास वाली चिकनी दोमट मृदा अधिक उपयुक्त होती है। पालक की अच्छी बढ़वार के लिए यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मृदा का पी-एच मान 6 से 7 के मध्य हो। इस फसल की बुआई सितंबर के शुरू में कर दें तथा अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए क्षेत्र विशेष की जलवायु एवं मृदा के अनुसार उन्नत प्रजातियों का चयन करना भी एक आवश्यक कदम है। इसकी खेती के लिए ऑलग्रीन, पूसा ज्योति, पूसा हरित, पालक नं. 51-16, वर्जीनिया सेवोय, अर्ली स्मूथ लीफ आदि उन्नत किस्में हैं। इसकी खेती के लिए खेत में पर्याप्त मात्रा में बीज की आवश्यकता होती है। अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए 25 से 30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज पर्याप्त होता है। पालक की खेती से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए खाद एवं उर्वरक की संतुलित मात्रा का ध्यान रखना अति आवश्यक है। भूमि में खाद एवं उर्वरक की मात्रा का निर्धारण करने के लिए सबसे पहले खेत की मृदा का परीक्षण करवा लेना चाहिए। यदि किसी कारण से मृदा का परीक्षण समय पर न हो सके, तो 25-30 टन प्रति हैक्टर गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद, 100 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए। प्रत्येक कटाई के बाद आधा बोरा यूरिया का प्रयोग करें।

धनिया

धनिया के लिए दोमट, मटियार या कछारी मृदा, जिसमें पर्याप्त मात्रा में जीवांश और अच्छी जलधारण की क्षमता हो, उपयुक्त होती है। इसकी उन्नत प्रजाति पंत धनिया-1, पन्त हरीतिमा, आजाद धनिया-1, मोरोक्कन, सिंधु आदि की बुआई माह के अन्तिम पखवाड़े में वर्षा समाप्त होने पर कर सकते हैं। इसके लिए 15-20 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है।

मेथी

- मेथी की खेती के लिए जीवांशयुक्त अच्छे जल निकास वाली दोमट चिकनी मृदा सर्वोत्तम होती है। इसकी लिए उन्नत किस्में जैसे-पूसा अर्ली बंचिंग, मेथी कसूरी एवं हिसार सोनाली हैं, जो 6-7 कटाई देती हैं।
- मेथी एवं कसूरी मेथी के लिए पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की दूरी 30×4-5 सें.मी. रखनी चाहिए। खेत तैयार करते समय 17 टन प्रति हैक्टर गोबर की अच्छी सड़ी हुई देसी खाद के साथ 2 बोरे सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा आधा बोरा यूरिया डालें। प्रत्येक कटाई के बाद मेथी में आधा बोरा यूरिया का प्रयोग करें। मेथी के लिए 15-20 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है।
- **अदरक एवं हल्दी:** इन फसलों में आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई एवं

अदरक

सिंचाई करें। 50 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हैक्टर की दर से खड़ी फसल में प्रयोग करें। झुलसा रोग दिखाई देने पर 0.2 प्रतिशत इंडोफिल-45 दवा का घोल बनाकर एक छिड़काव अवश्य करें।
- **प्याज:** खरीफ प्याज की रोपाई के 30 दिनों बाद खरपतवार निकालकर 35 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग प्रति हैक्टर की दर से करें।

अमरूद

अगस्त-सितंबर का महीना अमरूद के पौधे लगाने के लिए उत्तम माना जाता है। यह सख्त किस्म की फसल है और इसकी पैदावार के लिए प्रत्येक तरह की मृदा अनुकूल होती है। इसमें हल्की से लेकर भारी और कम निकास वाली मृदा भी शामिल है, जिसका पी-एच मान 6.5 से 7.5 होना उचित है। बाग लगाने से पहले 3×3 फीट के गड्ढे खोद लें। गड्ढे की ऊपर की मिट्टी को बराबर सड़ी-गली देसी खाद 10-15 गाड़ी प्रति एकड़ की दर से मिलाकर 2 कि.ग्रा. जिप्सम डालें। पौधा लगाने के बाद वर्ष में दो या तीन बार पेड़ की निराई-गुड़ाई करते समय फिर से गोबर की खाद देते रहें। नीम की खली देने से पौधा और भी तेजी से बढ़ता है और ज्यादा फल देता है। पौधे को आवश्यकतानुसार यूरिया और पोटाश भी देना चाहिए। पौधों को शुरुआती तीन वर्ष में सिर्फ 150 से 200 ग्राम तक ही दिया जाना चाहिए। उसके बाद जैसे-जैसे पौधा बड़ा होता जाता है वैसे इसकी मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। सभी खाद पौधे को सितंबर और अक्टूबर में दी जानी चाहिए। दीमक से ग्रसित क्षेत्र में 10-20 मि.ली. क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. प्रति गड्ढा डालें। अमरूद की हिसार सफेदा, हिसार सुर्खा, इलाहाबादी सफेदा, बनारसी सुर्खा, लखनऊ 49, ललित तथा सरदार किस्मों को सितंबर में लगाया जा सकता है। नये बागों की नियमित सिंचाई करें। अमरूद की फल-मक्खी की रोकथाम के लिए 700 मि.ली. मैलाथियॉन का 7-10 दिनों के अंतर पर छिड़काव करें।

फल उत्पादन एवं प्रबंधन

- **बेर:** सितंबर में बेर की रोपाई की जा सकती है। पौधे रोपने से पहले अवांछित पत्ते उतार दें। पौधे 27 फीट दूर लगाने से 72 पेड़ प्रति एकड़ लग सकते हैं। नये पौधे की 17 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें एवं बेर के पुराने बागों की भी सिंचाई करें।
- **पपीता:** सितंबर में पपीते के पेड़ भी लगा सकते हैं।

पपीता

- **आम:** वयस्क आम के पौधों में बची हुई उर्वरक की मात्रा (500 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस, 500

आंवला

इस फसल में इन्दर बेला कीट की रोकथाम के लिए डाइक्लोरोवास (नुवॉन) एक मि.ली. प्रति लीटर पानी में बने घोल में रुई भिगोकर सलाई की मदद से छेदों में डालकर चिकनी मिट्टी से बन्द करें। आंवलावर्गीय फलों में यदि डाइबैक, स्कैब तथा सूटी मोल्ड रोग का प्रकोप हो, तो कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्राम/लीटर पानी) का छिड़काव करें। कैंकर रोग की रोकथाम के लिए पौधों में स्ट्रैपटोसाइक्लीन तथा कॉपर सल्फेट (5 ग्राम स्ट्रैपटोसाइक्लीन, 10 ग्राम कॉपर सल्फेट/100 लीटर पानी में) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 ग्राम प्रति लीटर पानी मिलाकर छिड़काव करें।

आम

ग्राम पोटाश प्रति पौधा) को मानसून की बारिश के बाद डालें। आम में गमोसिस रोग की रोकथाम हेतु प्रति वृक्ष (10 वर्ष या अधिक आयु के पौधे के लिए) 250 ग्राम जिंक सल्फेट, 250 ग्राम कॉपर सल्फेट, 100 ग्राम बुझा हुआ चूना एवं 125 ग्राम बोरेक्स पेड़ के मुख्य तने से एक मीटर की दूरी पर 2-4 मीटर व्यास के अन्दर मिट्टी में मिलायें। वर्षा न होने की स्थिति में तुरन्त हल्की सिंचाई कर दें। एन्थ्रेक्नोज रोग से बचाव हेतु कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की 3 ग्राम मात्रा को 1 लीटर पानी में घोलकर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।

- **केला:** केले में प्रति पौधा 55 ग्राम यूरिया पौधे से 50 सें.मी. दूर घेरे में प्रयोग कर हल्की गुड़ाई करके भूमि में मिला दें। केला बीटल की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस 1.25 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। कार्बोफ्यूरॉन 3-4 ग्राम या फोरेट 2 ग्राम प्रति पौधे की दर तने के चारों ओर मिट्टी में मिलायें तथा इतनी ही मात्रा घेरे में डालें।

केला

- **लीची:** एक वर्ष के पौधे के लिए 5 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 50 ग्राम नाइट्रोजन, 25 ग्राम फॉस्फोरस एवं 50 ग्राम पोटाश की दर से पौधे के चारों ओर तने से दूर मिट्टी में मिलायें। 10 वर्ष या उससे अधिक आयु के पौधे के लिए 50 कि.ग्रा. गोबर/कम्पोस्ट खाद, 500 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस तथा 500 ग्राम पोटाश प्रति पेड़ की दर से प्रयोग करें। लीची में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई देने पर जिंक सल्फेट (0.4 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

लीची

- **कटहल:** इसके पके फलों के बीजों को निकालकर पौधशाला में बुआई करें। नए बाग लगाने के लिए रोपण का कार्य करें।
- **बेल:** वृक्षों पर शूट होल रोग की रोकथाम हेतु कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का छिड़काव करें। नए बाग लगाने हेतु रोपण का कार्य करें।

करौंदा

- **करौंदा:** इसके पके फलों की तुड़ाई करके बीज निकाल लें तथा नए पौधे तैयार करने के लिए बीजों की पौधशाला में बुआई करें। ■

पुष्प उत्पादन

- **ग्लैडियोलस:** ग्लैडियोलस का प्रवर्धन कन्द से होता है। कन्द लगभग 3-4 सें.मी. व्यास का होना चाहिए। लट्टूनुमा आकार वाले कन्द को चिपटे कन्द की अपेक्षा उत्तम पाया गया है। एक कन्द से कई छोटे-छोटे कन्द तैयार होते हैं। कन्द रोपण का उपयुक्त समय सितंबर एवं अक्टूबर है। रोपाई करने से पहले भूरे रंग के बाहरी छिलके को हटाकर 0.2 प्रतिशत कैप्टॉन या 0.1 प्रतिशत बेनलेट के घोल में 30 मिनट तक उपचारित करने के बाद ही कंदों की रोपाई करनी चाहिए। उत्तम होगा यदि कंदों के अंकुरित होने पर ही रोपाई करें। व्यावसायिक खेती हेतु कंदों को 20-30×15-20 या 25×15 सें.मी. की दूरी पर 5-10 सें.मी. की गहराई पर रोपाई करें। यदि कंद की रोपाई 20-25 दिनों के अंतराल पर कई बार में की जाये, तो स्पाइक लगातार अधिक समय तक मिलती रहती है। ग्लैडियोलस की उन्नत प्रजातियां जैसे-फ्रेंडशिप व्हाइट, फ्रेंडशिप पिंक, वॉटरमेलन पिंक, जैकसन, यूरोविजन, आरती, अप्सरा, अग्नि रेखा, सपना, शोभा, सुचित्रा, मोहिनी, मनोहर, मयूर, मुक्ता, मनीषा, मनहार आदि प्रमुख हैं। ग्लैडियोलस की रोपाई के लिए प्रति वर्ग मीटर 10 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद/कम्पोस्ट 200 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट एवं 20 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश रोपाई के 15 दिन पहले अच्छी तरह क्यारियों में मिला दें।

ग्लैडियोलस

गेंदा

- **अन्य पुष्प:** गेंदा के अलावा, कैलेंडुला, विगोनिया, गुलदाउदी, डहेलिया, स्वीट पी, सूरजमुखी, जिनिया, डॉगफ्लावर, कारनेशन, पोपी, लार्कस्पर इत्यादि फूलों के लिए क्यारियां अच्छी तरह तैयार करके बुआई कर दें ताकि सर्दियों में इन सुन्दर फूलों का आनन्द ले सकें। रजनीगंधा के स्पाइक की कटाई करके बाजार में बिक्री हेतु भेजें।

मीठाजल कृषि प्रौद्योगिकी से आर्थिक उत्थान

भारत में कृषि के क्षेत्र में विविधता और नवाचार की दिशा में बढ़ते कदमों के बीच, मीठाजल कृषि ने अपनी उपयोगिता और प्रभाव को सिद्ध किया है। जलवायु परिवर्तन, जल संसाधनों की घटती उपलब्धता और खाद्य सुरक्षा जैसी चुनौतियों के बीच, जलकृषि एक सशक्त वैकल्पिक आजीविका के रूप में उभर रही है। यह न केवल किसानों की आय बढ़ाने का साधन है, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक स्थिरता और सतत विकास को गति भी प्रदान करती है। इन्हीं पहलुओं को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिक तकनीकों पर आधारित पुस्तक 'मीठाजल कृषि प्रौद्योगिकी से आर्थिक उत्थान' डा. शैलेश सौरभ, डा. पंकज कुमार तिवारी, डा. धनंजय कुमार वर्मा, डा. प्रमोद कुमार साहु द्वारा उच्च अनुसंधान एवं अनुभवों का लेखन एवं संकलन है।

देश के विभिन्न संस्थानों एवं कृषि विश्वविद्यालयों के दक्ष वैज्ञानिकों एवं शोधकर्ताओं के लेखों को इस पुस्तक में शामिल किया गया है। सरल शब्दों और सहज भाषा में लिखी गई यह पुस्तक मीठाजल कृषि की विविध विधाओं और तकनीकों का विस्तृत परिचय देती है। इसमें कुल 26 अध्याय शामिल हैं। यह पुस्तक जलकृषि से जुड़े वैज्ञानिक नवाचारों, तकनीकों, व्यावसायिक संभावनाओं और सामाजिक प्रभावों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करती है। भारत में 'नीली क्रांति' और सतत ग्रामीण विकास के राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में यह पुस्तक एक महत्वपूर्ण प्रयास है। पुस्तक में आनुवंशिक रूप से उन्नत मत्स्य प्रजातियां जैसे-जयंती रोहू, अमृत कतला और जीआई-स्कैम्पी के पालन की वैज्ञानिक विधियां और उनके उत्पादन की विशेषताएं विस्तृत रूप में दी गई हैं। साथ ही, बायोफ्लॉक तथा पुनर्चक्रित जल प्रणाली जैसे अत्याधुनिक पालन मॉडल की तकनीकी जानकारी, संसाधन दक्षता और पर्यावरणीय लाभों को भी समाविष्ट किया गया है। विशेष उल्लेखनीय है कि इसमें न केवल परंपरागत पालन विधियों की चर्चा की गई है, बल्कि सजावटी मत्स्यपालन, मोती की खेती, रोग-निदान, मत्स्य बीज उत्पादन तथा डिजिटल साधनों जैसे-'मत्स्य-सेतु' और 'ट्रीट माई फिश' एप्स के उपयोग द्वारा ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा देने पर भी बल दिया गया है। ये पहले मत्स्यपालन को एक परंपरागत व्यवसाय से आधुनिक, लाभकारी और पर्यावरणीय रूप से स्थायी उद्यम में बदलने की क्षमता रखती हैं।

पुस्तक में नवीनतम वैज्ञानिक प्रौद्योगिकियों जैसे नैनो प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी एवं मत्स्य प्रजातियों के उन्नयन से संबंधित तकनीकी विषयों को भी शामिल किया गया है। ये तकनीकें उत्पादन क्षमता बढ़ाने, रोगों पर नियंत्रण और पर्यावरणीय प्रभावों को न्यूनतम करने में मददगार सिद्ध होती हैं। लेखकों ने विषय को व्यावहारिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हुए इसे नीति-निर्माताओं, वैज्ञानिकों, छात्रों और प्रशिक्षकों के लिए भी उपयोगी बनाया है। भाषा की सादगी और विषय की गहराई पुस्तक को शोधार्थियों और क्षेत्रीय विस्तारकों के लिए भी उपयुक्त बनाती है।

जलकृषि पर अतिउपयोगी यह पुस्तक न केवल एक शैक्षणिक स्रोत है, बल्कि ग्रामीण

भारत के आर्थिक उत्थान का एक सशक्त उपकरण भी बन सकती है।

वर्तमान समय में मूल्यवर्द्धित कृषि उत्पादों की मांग बढ़ रही है। पुस्तक इस मांग की पूर्ति के लिए जलकृषि आधारित व्यवसायों को अपनाने हेतु मार्गदर्शन प्रदान करती है। साथ ही, इसमें प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना जैसी सरकारी पहलों का उल्लेख करते हुए यह भी बताया गया है कि ये योजनाएं कैसे किसान समुदाय को आत्मनिर्भर बना सकती हैं। यह पुस्तक अनुसंधान एवं क्षेत्रीय अनुप्रयोगों के बीच की दूरी को प्रभावी रूप से कम करती है। 'विकसित कृषि संकल्प अभियान' की भावना के अनुरूप, यह पुस्तक जलकृषकों को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में एक सार्थक मार्गदर्शन प्रदान करती है। ■

(प्रस्तुतिः गजेन्द्र)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का नवीनतम प्रकाशन

मीठाजल कृषि प्रौद्योगिकी से आर्थिक उत्थान

लेखकः डा. शैलेश सौरभ, डा. पंकज कुमार तिवारी, डा. धनंजय कुमार वर्मा, डा. प्रमोद कुमार साहु

मूल्यः 800/- रुपये मात्र, **डाक व्ययः** 100 रुपये

संपर्कः प्रभारी, व्यवसाय एकक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012

दूरभाषः 011-25843657, **ईमेलः** bmicar@icar.org.in

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹50

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली-110092 से लेजरटाईपसैट एवं मुद्रित। संपादक: सुनीता अरोड़ा